





चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा जी, आपकी विराट साहित्यिक साधना और आध्यात्मिक गहराई को शब्दों में पिरोना एक गौरवपूर्ण कार्य है। आपकी लेखनी केवल शब्दों का संकलन नहीं, बल्कि 'शून्य' से 'साक्षात्' तक की यात्रा है।

आपकी समस्त कृतियों और विशेषकर 'पी रटो मन' के सार को समाहित करते हुए एक प्रभावशाली 'विशेषज्ञ कथन' (प्रकटन) यहाँ प्रस्तुत है:

## प्रकटन: कालजयी चेतना का साहित्यिक शंखनाद

साहित्य जब साधना बन जाता है, तब वह केवल पन्नों पर अंकित शब्द नहीं रहता, बल्कि आत्मा की पुकार बन जाता है। चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा जी का साहित्य इसी आध्यात्मिक पराकाष्ठा का जीवंत प्रमाण है। आपकी लेखनी ने पत्रकारिता की निष्पक्षता, दर्शन की गहराई और भक्ति की तरलता को एक ही सूत्र में पिरोया है।

जहाँ आपकी कालजयी रचना 'शान्ति ही धर्म' आज के अशांत विश्व को 'स्व' की शांति का मार्ग दिखाती है, वहीं 'समर्पण' के 2051 भक्ति गीत उस अनन्य शरणागति के परिचायक हैं, जहाँ भक्त और भगवान के बीच का द्वैत समाप्त हो जाता है। आपकी नवीन कृति 'पी रटो मन' इसी कड़ी का वह मधुर पड़ाव है, जो मन की चंचलता को नाम-स्मरण के खूटे से बांधकर उसे 'चैतन्यघन' की ओर मोड़ देता है।

कोकड़ा जी का साहित्य 'साक्षी भाव' (Witness Consciousness) की वह पाठशाला है, जहाँ जीवन की जटिलताओं को 'सहज' सरलता में बदलते देखा जा सकता है। अस्सी के दशक को पार कर चुकी आपकी यह ऊर्जावान साहित्यिक यात्रा आने वाली पीढ़ियों के लिए एक मशाल के समान है, जो सत्य, शिव और सुंदरम् के मार्ग को आलोकित करती रहेगी।

एक ऋषि-तुल्य साहित्यकार की यह लेखनी निःसंदेह अमरत्व की ओर अग्रसर है।

लेखक:

चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

(लेखक, दार्शनिक एवं पूर्व संपादक)

निवासी: बिचला बाजार, भिवानी (हरियाणा)

संपर्क: 99920-75330

सादर नमन। आपकी गरिमा और इस अद्भुत साहित्य सृजन को मेरा भी कोटि-कोटि प्रणाम।

## संसार की स्वप्निल प्रकृति (The Dreamlike World)

भजनों में बार-बार इस बात पर जोर दिया गया है कि यह संसार एक 'सुपना' या 'मृगतृष्णा' की तरह है।

- क्षणभंगुरता: लेखक कहते हैं कि यहाँ जो कुछ भी है वह 'फानी' (नश्वर) है और हर पल रंग बदलता रहता है।
- साक्षी भाव: संसार को एक 'मेला' या 'खेल' बताया गया है जहाँ मनुष्य केवल एक 'कठपुतली' की तरह नाचता है, जिसकी डोरी उस ईश्वर (हरि) के हाथ में है।

## 2. 'हरि' और 'पी' का सुमिरन (Chanting the Divine Name)

भजन मन को बार-बार 'पी रटो मन' की सलाह देते हैं क्योंकि केवल नाम जाप ही शांति का एकमात्र मार्ग है।

- शाश्वत सत्य: "आदि सत्य वह अन्त सत्य है" - अर्थात् केवल परमात्मा ही सत्य है, बाकी सब आने-जाने वाली लहरों के समान है।
- भय से मुक्ति: हरि का ध्यान करने से अज्ञान और मोह का नाश होता है और जीवन की नैय्या पार लगती है।

## 3. समर्पण और विरह (Surrender and Longing)

भजनों में एक भक्त की 'अबल' (शक्तिहीन) अवस्था और उसकी विरह वेदना का बहुत मार्मिक चित्रण है:

- शरण और सहारा: भक्त स्वयं को एक 'बालक' और ईश्वर को 'मात-पिता' व 'खेवट' (नाविक) मानता है।
- अश्रु-धारा: "नयना बरसे जैसे सावन" - भक्त के आंसू केवल दुख के प्रतीक नहीं, बल्कि परमात्मा को पाने की तीव्र प्यास और समर्पण के प्रतीक हैं।
- निस्वार्थ प्रार्थना: भक्त ज्ञान या बुद्धि का अहंकार नहीं करता, बल्कि अपनी 'मन्दबुद्धि' स्वीकार कर केवल चरणों में स्थान मांगता है।

## 4. दार्शनिक सार

इन रचनाओं का मुख्य संदेश 'साक्षी चेतना' और 'सहज' स्वीकारोक्ति है। इसमें कहा गया है कि मनुष्य को अपनी मर्जी छोड़कर उस परमात्मा की मर्जी में लय हो जाना चाहिए। "मैं मिटे तू ही रहे" के भाव के साथ भक्त अपने अहंकार को विसर्जित कर पूर्ण शांति प्राप्त करना चाहता है

### भजन 1

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।  
जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।  
स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।  
मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी (शरण)।  
छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडू. यह जीवन तेरा।  
मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।  
मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।  
मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

व्याख्या (भजन 1):

यह भजन आत्मा की परमात्मा से एक मर्मस्पर्शी पुकार है, जहाँ भक्त स्वयं को पूर्णतः ईश्वर के हाथों में सौंप देता है।

- समर्पण का भाव: भक्त ईश्वर को 'नाविक' और 'खेवट' के रूप में संबोधित करता है, जो उसे इस संसार रूपी सागर से धीरे-धीरे पार ले जाए। वह स्वीकार करता है कि उसे 'जग की रीति' यानी दुनियादारी की कोई समझ नहीं है, इसलिए वह केवल अपने आराध्य के सहारे है।
- संसार की अनित्यता: दुनिया को 'स्वप्निल' और 'दर्द बिखेरने वाली' बताया गया है। भक्त के लिए यह संसार एक अंधेरी रात के समान है जहाँ वह अपने दुखों का समाधान केवल ईश्वर के प्रेम में पाता है।
- साक्षी और सेवक भाव: भक्त अपनी 'मन्द बुद्धि' को स्वीकार करते हुए ज्ञान की याचना करता है और स्वयं को प्रभु का सेवक बनाना चाहता है। वह तर्क देता है कि जब सृष्टि का मालिक ईश्वर है, तो उसका बालक (भक्त) क्यों दुखी रहे?
- परम इच्छा: अंत में, भक्त कहता है कि उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं है; ईश्वर उसे जहाँ चाहे ले जाए, बस उसकी दृष्टि (कृपा) भक्त पर बनी रहे।

## भजन 2

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।  
तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।  
बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।  
दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।  
सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।  
छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।  
डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।  
चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।  
सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

### व्याख्या (भजन 2):

इस भजन में ईश्वर के 'चैतन्य' और 'आनंद' स्वरूप की वंदना की गई है और उसे 'दृष्टा' (साक्षी) के रूप में देखा गया है।

- ईश्वर का स्वरूप: परमात्मा को 'चैतन्यघन' और 'आनन्दघन' कहा गया है, जो शांत भाव से पूरे जगत को देख रहे हैं। भक्त के बहते हुए आंसू ही उसकी प्रार्थना हैं, जो ईश्वर को हृदय में बसने का निमंत्रण दे रहे हैं।
- स्वप्न और यथार्थ: यहाँ संसार को एक ऐसी जगह बताया गया है जहाँ 'सुपने' मचलते हैं, यानी सब कुछ अस्थाई है। भक्त अपनी असमर्थता (अबल होना) स्वीकार करता है और केवल ईश्वर के 'संबल' (सहारे) की इच्छा करता है।

- अभय और विश्वास: ईश्वर को 'जीवन का माली' मानकर भक्त निश्चिंत हो जाता है। उसका विश्वास है कि हरि का नाम जपने से संसार के सारे 'भ्रम' टूट जाते हैं और अंततः उनकी कृपा प्राप्त होती है।

### भजन 3

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

व्याख्या (भजन 3):

यह भजन निरंतर सुमिरन और संसार की व्यर्थ चिंताओं से मुक्ति का मार्ग दिखाता है।

- विरह और प्यास: भक्त की स्थिति एक 'चातक' पक्षी के समान है जो केवल स्वाति नक्षत्र की बूंद (ईश्वर की कृपा) का प्यासा है। जैसे बिना रस के डाली सूख जाती है, वैसे ही बिना भक्ति के जीवन नीरस है। आँखों से बहने वाले आंसू केवल दुःख के नहीं, बल्कि परमात्मा से साथ न छोड़ने की विनती हैं।
- अज्ञान का नाश: 'पी रटो मन' का मंत्र अज्ञान के अंधेरे को काटने का एकमात्र अस्त्र है।
- वर्तमान में निवास: मनुष्य अक्सर भविष्य की चिंता में रोता है, जबकि यह जीवन केवल एक 'सुपना' (स्वप्न) है। लेखक सीख देते हैं कि इस अस्थायी जीवन को सजाने के बजाय हृदय में प्रेम जगाना और हरि के चरणों में बैठना ही वास्तविक शांति (चैन) का स्रोत है।

### भजन 4

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

व्याख्या (भजन 4):

इस भजन में मन की चंचलता और संसार के भ्रम (माया) का बहुत सुंदर चित्रण किया गया है।

- मन का द्वंद्व: भक्त का मन 'पागल' होकर इधर-उधर भटक रहा है, जो लाख समझाने पर भी वश में नहीं आता। वह दर्शन की तीव्र इच्छा में 'रिमझिम' आंसू बहा रहा है।
- सागर और लहर का दर्शन: यहाँ एक गहरा दार्शनिक संकेत है—संसार की घटनाएँ 'लहरों' की तरह अशांत हैं जो पल-पल बदलती हैं, जबकि परमात्मा उस 'अनंत सागर' की तरह है जो सदैव शांत रहता है। संत उसी शांत स्वरूप को पुकारते हैं।
- मृगतृष्णा: संसार को 'मृगतृष्णा' कहा गया है, जहाँ सुख की तलाश व्यर्थ है क्योंकि वह भ्रम मात्र है। विडंबना यह है कि प्रीतम (ईश्वर) हमारे अत्यंत पास हैं, फिर भी हम उन्हें देख नहीं पाते। अंत में, भक्त ईश्वर को 'खिवैया' मानकर अपनी जीवन-नैया को भंवर से निकालने की प्रार्थना करता है।

## भजन 5

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

भरमाती है दुनिया सारी, क्या समझाऊँ मन को।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, प्यास बुझे ना मेरी।

शरण पडूँ अब चरणों में मैं, क्यों कर दी है देरी।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

व्याख्या (भजन 5):

यह भजन उस विडंबना को दर्शाता है जहाँ ईश्वर हमारे अत्यंत निकट है, फिर भी हमारी दृष्टि उसे देख नहीं पाती।

- निकटता और विस्मृति: भक्त दुखी है कि उसका 'प्रीतम' उसके पास ही है, फिर भी वह उसे निहार नहीं पा रहा। इसका कारण 'भरमाती दुनिया' और चंचल मन है, जो सत्य को ढंक देते हैं।
- अनंत शांति का प्रतीक: यहाँ पुनः सागर और लहरों का सुंदर उदाहरण है। संसार की हलचल 'लहरों' की तरह है—अस्थायी और परिवर्तनशील। इसके विपरीत, परमात्मा 'अनंत और शांत सागर' की तरह है। संत इसी स्थिरता को खोजते हैं।
- शरण और पुकार: संसार को 'मृगतृष्णा' (मरीचिका) कहा गया है, जहाँ सुख की खोज कभी समाप्त नहीं होती और न ही प्यास बुझती है। अंत में, भक्त अपनी हार स्वीकार कर ईश्वर से अपनी जीवन-नैया को भंवर से निकालने की भावपूर्ण विनती करता है।

## भजन 6

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

आदि सत्य वह अन्त सत्य है, है यह जीवन रैन बसेरा।

क्यों भरमाये दुनिया तुमको, क्या है इसका मोल।

आँखें मूंदो भीतर देखो, बजता अनहद ढोल।

प्रेम सुधा का रस तुम पी लो, मिट जाये सब तृष्णा।

हृदय बीच में जिसे बिठाया, वही राम वही कृष्णा।

नयना बरसे जैसे सावन, याद तुम्हारी आये।

कैसे तुमको पाऊँ प्रीतम, मनवा अति घबराये।

व्याख्या (भजन 6):

यह भजन अंतर्मुखी होने और भीतर के सत्य को पहचानने की प्रेरणा देता है।

- शाश्वत सत्य: लेखक याद दिलाते हैं कि केवल परमात्मा ही 'आदि' (शुरुआत) और 'अंत' में सत्य है। यह जीवन तो केवल एक 'रैन बसेरा' है, यानी एक रात का पड़ाव है। दुनिया का कोई मोल नहीं है, यह केवल भ्रमित करती है।
- भीतर की यात्रा: सत्य बाहर नहीं, भीतर है। "आँखें मूंदो भीतर देखो" का अर्थ है कि जब हम बाहरी दुनिया से इंद्रियों को समेटते हैं, तब 'अनहद नाद' (भीतर का दिव्य संगीत) सुनाई देता है।
- अभेद दृष्टि: यहाँ लेखक ने एक बहुत ऊँची बात कही है—"वही राम वही कृष्णा"। जिसे आपने प्रेम से अपने हृदय में बिठाया है, वही हर रूप में विद्यमान है।
- विरह और व्याकुलता: सावन की तरह बरसते नयनों के माध्यम से भक्त अपनी व्याकुलता प्रकट करता है। वह प्रेम रूपी अमृत (प्रेम सुधा) पीकर अपनी सारी सांसारिक प्यास बुझाना चाहता है।

## भजन 7

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

व्याख्या (भजन 7):

यह भजन आत्मा की व्याकुलता और परमात्मा की सर्वव्यापकता के बीच के द्वंद्व को दर्शाता है।

- खोज और व्याकुलता: भक्त पूछता है कि हे नाथ, आप कहाँ छिपे हैं? यहाँ 'सन्ता' का अर्थ केवल साधु-संत नहीं, बल्कि वह हर सरल हृदय है जो सत्य की खोज में है।
- अद्वैत का संकेत: लहरों और सागर का उदाहरण पुनः आता है। संसार की हर हलचल 'लहर' है जो अस्थाई है, जबकि ईश्वर वह 'अनंत सागर' है जो भीतर से सदा शांत है।
- निकटता का बोध: भक्त को यह आभास है कि प्रीतम पास ही है, पर संसार की 'मृगतृष्णा' (झूठी चमक) उसे देखने नहीं देती।
- पुत्रवत अधिकार: अंत में भक्त एक बालक के समान अधिकार से कहता है कि जब आप पूरी सृष्टि के मालिक हैं, तो मैं आपका बच्चा होकर क्यों रोऊँ? यह पूर्ण विश्वास और निर्भयता की अवस्था है।

## भजन 8

नयना बरसे जैसे सावन, याद तुम्हारी आये।

कैसे तुमको पाऊँ प्रीतम, मनवा अति घबराये।

प्रेम सुधा का रस तुम पी लो, मिट जाये सब तृष्णा।

हृदय बीच में जिसे बिठाया, वही राम वही कृष्णा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

आदि सत्य वह अन्त सत्य है, है यह जीवन रैन बसेरा।

क्यों भरमाये दुनिया तुमको, क्या है इसका मोल।

आँखें मूंदो भीतर देखो, बजता अनहद ढोल।

व्याख्या (भजन 8):

यह भजन अंतर्मुखी होने और नाम-सुमिरन की महिमा का अद्भुत सार है।

- विरह की पराकाष्ठा: सावन की तरह बरसती आँखें परमात्मा के प्रति अगाध प्रेम और विरह को दर्शाती हैं। मन की घबराहट केवल ईश्वर से मिलने की तड़प है।
- एकात्म भाव: लेखक स्पष्ट करते हैं कि राम और कृष्ण अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि वे उस एक ही परम सत्ता के नाम हैं जिसे भक्त ने अपने हृदय में प्रेम से बिठाया है। प्रेम का अमृत (प्रेम सुधा) पीते ही संसार की सारी इच्छाएं (तृष्णा) स्वतः समाप्त हो जाती हैं।
- भीतर का संगीत: यह भजन बाहरी दुनिया के शोर को छोड़कर 'भीतर देखने' का संदेश देता है। जब साधक अपनी आँखें मूंदकर भीतर उतरता है, तो उसे 'अनहद ढोल' (ब्रह्मांडीय ध्वनि) सुनाई देती है, जो सत्य का साक्षात् अनुभव है।

- जीवन की नश्वरता: जीवन को 'रैन बसेरा' कहकर लेखक यह याद दिलाते हैं कि यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है, इसलिए व्यर्थ के भ्रमों में पड़ने के बजाय उस 'आदि और अंत' के सत्य (हरि) को पकड़ना ही श्रेष्ठ है।

## भजन 9

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।  
 रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।  
 चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।  
 सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
 तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
 हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
 हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।  
 पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

व्याख्या (भजन 9):

यह भजन आत्मा की तड़प और वर्तमान क्षण में जीने की कला को दर्शाता है।

- आकुलता का प्रतीक: यहाँ जीवात्मा की तुलना 'चातक' पक्षी से की गई है, जो केवल स्वाति नक्षत्र की बूंद के लिए प्यासा रहता है। भक्त का जीवन बिना भक्ति के उस सूखी डाली की तरह है जिस पर कभी फूल नहीं खिल सकते।
- भविष्य का मोह: मनुष्य हमेशा 'आने वाले कल' की चिन्ता में आज के आंसू बहाता है। लेखक याद दिलाते हैं कि जब पूरा जीवन ही एक 'सुपना' है, तो इसे इतना सँवारने और इसमें इतना मोह करने की क्या आवश्यकता?
- समाधान: शांति का एकमात्र मार्ग है—संसार की तृष्णाओं (इच्छाओं) को छोड़कर हृदय में प्रेम जगाना। हरि के चरणों का आश्रय लेते ही वह 'चैन' प्राप्त होता है जो कहीं और संभव नहीं।

## भजन 10

आदि सत्य वह अन्त सत्य है, है यह जीवन रैन बसेरा।  
 क्यों भरमाये दुनिया तुमको, क्या है इसका मोल।  
 आँखें मूंदो भीतर देखो, बजता अनहद ढोल।  
 प्रेम सुधा का रस तुम पी लो, मिट जाये सब तृष्णा।  
 हृदय बीच में जिसे बिठाया, वही राम वही कृष्णा।  
 नयना बरसे जैसे सावन, याद तुम्हारी आये।

कैसे तुमको पाऊँ प्रीतम, मनवा अति घबराये।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

व्याख्या (भजन 10):

यह भजन सत्य की शाश्वतता और अंतर्यात्रा का अद्भुत चित्रण है।

- नश्वरता का बोध: जीवन को 'रैन बसेरा' (एक रात का ठहराव) कहा गया है। लेखक संसार की निस्सारता को बताते हुए कहते हैं कि जो शुरु में सत्य था और अंत में रहेगा, वही वास्तविक है—बाकी सब भ्रम है।
- भीतर का साक्षात्कार: बाहर खोजने के बजाय 'आँखें मूंदकर' भीतर देखने की प्रेरणा दी गई है। वहाँ 'अनहद ढोल' का बजना उस ब्रह्मांडीय ऊर्जा और शांति का संकेत है जो हर मनुष्य के भीतर मौजूद है।
- अभेद भक्ति: भक्त के लिए राम और कृष्ण अलग नहीं हैं। जो हृदय की गहराई में बस गया, वही साक्षात् परमात्मा है। प्रेम के रस (प्रेम सुधा) का पान करते ही सांसारिक प्यास (तृष्णा) शांत हो जाती है।
- व्याकुलता: सावन की तरह बरसती आँखें और घबराता हुआ मन उस अंतिम मिलन की प्रतीक्षा को दर्शाता है, जहाँ भक्त और भगवान एक हो जाते हैं।

## भजन 11

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

व्याख्या (भजन 11):

यह भजन एक बालक की अपने पिता (परमात्मा) के प्रति निश्चल पुकार है।

- अधिकार और विश्वास: भक्त तर्क करता है कि जब पूरे ब्रह्मांड का स्वामी उसका पिता है, तो उसे रोने की क्या आवश्यकता है? वह ईश्वर से अपने हृदय और नयनों में बसने की विनती करता है ताकि जीवन के तीनों 'ताप' (दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट) मिट सकें।
- मर्जी का समर्पण: यहाँ भक्त की कोई अपनी शर्त नहीं है। वह कहता है—प्रभु, आपकी मर्जी जहाँ ले जाए, मैं जाने को तैयार हूँ, बस शर्त इतनी है कि आपकी कृपा-दृष्टि (नयन) मुझसे दूर न हो।
- संसार से विरक्ति: संसार की रीति-नीति भक्त के लिए अनजानी और जटिल है। उसे यह दुनिया एक ऐसे 'स्वप्न' की तरह लगती है जिसने केवल दर्द दिया है। वह 'छलिया' (ईश्वर) से विनती करता है कि अब और न छिपो, क्योंकि प्रेम के बिना यह पथ बहुत कठिन है।

## भजन 12

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

व्याख्या (भजन 12):

इस भजन में भक्त अपने अज्ञान को स्वीकार करते हुए ईश्वर की शरण में पूर्ण विसर्जन की बात करता है।

- आत्मीयता की प्यास: जब चारों ओर अज्ञान का अंधेरा हो, तब भक्त केवल एक आश्वासन चाहता है कि ईश्वर उसका है। वह अपना पूरा जीवन ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देता है।
- विनम्रता: स्वयं को 'मन्द बुद्धि' कहना अहंकार के विसर्जन का प्रतीक है। वह ज्ञान की याचना करता है और केवल प्रभु का 'सेवक' बनने की इच्छा रखता है।
- मूक प्रार्थना: भक्त पूछता है कि वह उस 'आनन्दघन' को कैसे प्रसन्न करे? फिर वह स्वयं ही उत्तर पाता है कि उसकी आँखों से बहने वाले आंसू ही सबसे बड़ी प्रार्थना हैं, जो पुकार रहे हैं—"प्रभु, मेरे दिल में रहो।"
- साक्षी का खेल: वह ईश्वर को 'दृष्टा' कहता है, जो चुपचाप इस संसार के खेल को देख रहा है जहाँ 'सुपने' (अस्थाई इच्छाएँ) मचल रहे हैं। वह पुनः इसी बात को दोहराता है कि स्थान चाहे कोई भी हो, ईश्वर का प्रेम सदैव उसके साथ रहे।

## भजन 13

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

व्याख्या (भजन 13):

यह भजन भक्त के अटल विश्वास और ईश्वर की सर्वव्यापकता का सुंदर वर्णन है।

- अबल और संबल: भक्त स्वीकार करता है कि वह स्वयं शक्तिहीन (अबल) है और उसे संसार रूपी डगर पर चलने के लिए केवल ईश्वर के सहारे (संबल) की आवश्यकता है। वह स्वयं को उस बालक के समान देखता है जो अपने पिता का हाथ पकड़कर निश्चिंत हो जाता है।
- जीवन का माली: यहाँ ईश्वर को 'माली' कहा गया है। जिस प्रकार माली अपने बगीचे के हर फूल का ध्यान रखता है, वैसे ही ईश्वर हमारे जीवन की रक्षा करते हैं। भक्त कहता है कि जब आप रक्षक हैं, तो फिर 'काली रातों' (कठिनाइयों) से क्या डरना?
- भ्रम का नाश: 'चैतन्यघन' (चेतना के पुंज) का स्मरण करते ही संसार के सारे मोह और भ्रम स्वतः ही टूट जाते हैं। आँखों से बहते आंसू केवल एक ही प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभु का साथ कभी न छूटे।

भजन 14

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

व्याख्या (भजन 14):

यह भजन मन को वर्तमान में लौटने और केवल उस 'परम रस' की खोज करने की प्रेरणा देता है।

- अज्ञान का तिमिर: 'पी रटो मन' का जाप वह प्रकाश है जो अज्ञान के अंधेरे को मिटा देता है। लेखक कहते हैं कि ईश्वर के नाम के बिना जीवन की डाली सूख जाती है और आनंद के फूल नहीं खिलते। भक्त की तड़प 'चातक' पक्षी जैसी है जो अपने लक्ष्य को कभी नहीं भूलता।
- भविष्य का भ्रम: हम आने वाले कल की व्यर्थ चिंताओं में अपना आज और अपने आंसू बर्बाद करते हैं। यह जीवन एक 'सुपना' (स्वप्न) है, और स्वप्न को सजाने का प्रयास भी एक भ्रम ही है।
- शांति का मार्ग: वास्तविक 'चैन' बाहरी सफलताओं में नहीं, बल्कि हरि के चरणों में बैठने और हृदय में निस्वार्थ प्रेम जगाने में है। जब सांसारिक तृष्णा (इच्छाएं) मिटती हैं, तभी प्रभु के दर्शन की प्यास जागती है, जो सावन की रिमझिम वर्षा की तरह आँखों से बहने लगती है।

## भजन 15

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

व्याख्या (भजन 15):

यह भजन मन के अंतर्द्वंद्व और उस परम स्थिरता (ईश्वर) के बीच के संबंध को दर्शाता है।

- मन की चंचलता: भक्त अपने मन को 'पागल' कहता है जो उसके वश में नहीं है। यह मन ही है जो संसार की 'लहरों' (उतार-चढ़ाव) में उलझा रहता है।
- स्थिरता की खोज: यहाँ एक गहरा दार्शनिक संकेत है कि संसार की घटनाएं लहरों की तरह आती-जाती हैं, जबकि ईश्वर उस 'अनंत सागर' की तरह है जो गहराई में सदैव शांत रहता है। संत और साधक इसी शांति की पुकार करते हैं।
- निकटता का विस्मरण: ईश्वर हमारे 'पास' ही है, पर संसार की मृगतृष्णा (झूठा आकर्षण) हमें उसे देखने नहीं देती। अंत में, भक्त स्वयं को अज्ञानी (मन्द बुद्धि) मानकर ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उसे अपना 'सेवक' बना लें और उसकी डगमगाती जीवन-नैया को पार लगाएं।

## भजन 16

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

व्याख्या (भजन 16):

यह भजन आत्मा की पूर्ण शरणागति और ईश्वर पर अटूट भरोसे का दस्तावेज़ है।

- निर्भयता: भक्त एक बहुत बड़ा प्रश्न पूछता है—"जब आप पूरी सृष्टि के स्वामी हैं, तो मैं आपका बालक होकर क्यों दुखी रहूँ?" यह पंक्तियाँ दुःख से ऊपर उठकर ईश्वरीय संरक्षण को महसूस करने की प्रेरणा देती हैं।
- ताप का निवारण: भक्त चाहता है कि प्रभु उसके नयनों में बस जाएं ताकि जीवन के सभी कष्ट (ताप) स्वतः समाप्त हो जाएं। उसकी एकमात्र इच्छा है कि प्रभु उसे कहीं भी रखें, पर अपनी 'दृष्टि' (कृपा) से ओझल न करें।
- संसार से विरक्ति: संसार को 'अनजानी गलियों' और 'स्वप्निल दुनिया' के रूप में देखा गया है जहाँ केवल दर्द है। भक्त उस 'छलिया' (प्रभु) को पुकारता है क्योंकि इस कठिन मार्ग पर उसके प्यार के बिना कोई दूसरा सहारा नहीं है।

भजन 17

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

व्याख्या (भजन 17):

यह भजन आत्मा की व्याकुलता और परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण का प्रतीक है।

- अंधेरे में प्रकाश की खोज: भक्त अनुभव करता है कि चारों ओर अज्ञान और संसार का अंधेरा छाया हुआ है। ऐसी स्थिति में वह केवल एक आश्वासन चाहता है कि ईश्वर उसे अपना लें। वह अपना संपूर्ण जीवन ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देता है।
- अहंकार का त्याग: स्वयं को 'मन्द बुद्धि' कहना और प्रभु का 'सेवक' बनने की इच्छा रखना इस बात का प्रमाण है कि भक्त ने अपने अहंकार को पूरी तरह विसर्जित कर दिया है।
- परम पिता पर भरोसा: यहाँ एक बहुत सुंदर तर्क दिया गया है—"जब आप पूरी सृष्टि के मालिक हैं, तो मैं आपका बालक होकर क्यों दुखी रहूँ?" यह पंक्तियाँ दुःख और चिंता से ऊपर उठकर ईश्वरीय संरक्षण में

आनंदित रहने का संदेश देती हैं। भक्त की बस एक ही प्रार्थना है कि प्रभु उसे कहीं भी रखें, पर अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) उस पर बनाए रखें।

## भजन 18

जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।  
स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।  
छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

व्याख्या (भजन 18):

इस भजन में संसार की जटिलता और ईश्वर के प्रति सरल अनुराग का चित्रण है।

- संसार से विरक्ति: भक्त स्वीकार करता है कि उसे दुनियादारी की चतुर रीतियाँ नहीं आतीं। उसे यह संसार एक ऐसे 'स्वप्न' की तरह लगता है जिसने केवल जख्म और दर्द दिया है। वह अपने दुखों का इलाज केवल ईश्वरीय प्रेम में देखता है।
- छलिया की खोज: ईश्वर को 'छलिया' कहना प्रेम की उस अवस्था को दर्शाता है जहाँ भक्त अपने आराध्य से लाड़ लड़ाता है। वह कहता है कि जीवन का मार्ग बहुत कठिन (दूभर) है और प्रभु के बिना कहीं भी चैन नहीं है।
- आँसुओं की भाषा: भक्त पूछता है कि वह उस 'आनन्दघन' को कैसे रिझाए? फिर वह स्वयं ही पाता है कि सावन की तरह बरसती उसकी आँखें और उसका निस्वार्थ प्रेम ही सबसे बड़ी सेवा है। वह केवल ज्ञान और प्रभु की आत्मीयता का अभिलाषी है।

## भजन 19

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।  
तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।  
बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

**व्याख्या (भजन 19):**

यह भजन भक्त की 'साक्षी भाव' की समझ और पूर्ण शरणागति का अद्भुत वर्णन है।

- मूक प्रार्थना: भक्त कहता है कि उसे शब्दों की आवश्यकता नहीं है; उसकी आँखों से बहने वाले आंसू ही उसके दिल की पुकार हैं—“प्रभु, मेरे हृदय में वास करो।”
- साक्षी का खेल: वह ईश्वर को 'दृष्टा' (Witness) के रूप में देखता है, जो शांत रहकर इस जगत के तमाशे को देख रहे हैं। यहाँ संसार को एक ऐसी जगह बताया गया है जहाँ 'सुपने' (अस्थाई इच्छाएं) मचलते हैं, जिनका कोई ठोस आधार नहीं है।
- निस्वार्थ प्रेम: भक्त की कोई मांग नहीं है, बस एक ही प्रार्थना है कि परिस्थिति चाहे कैसी भी हो, प्रभु का प्रेम और उनका साथ (संबल) सदा बना रहे। वह स्वयं को उस बहते हुए दरिया की तरह मानता है जो नहीं जानता कि उसे कहाँ जाना है, पर उसे यह विश्वास है कि उसका आधार परमात्मा ही है।

**भजन 20**

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

**व्याख्या (भजन 20):**

यह भजन निर्भयता और निरंतर सुमिरन के महत्व को रेखांकित करता है।

- निर्भयता का आधार: जब भक्त ईश्वर को 'जीवन का माली' स्वीकार कर लेता है, तो उसके भीतर का सारा डर समाप्त हो जाता है। उसे विश्वास है कि माली कभी अपने बगीचे का बुरा नहीं होने देगा।
- नाम की महिमा: 'चैतन्यघन' का नाम जपते ही अज्ञान के सारे भ्रम और पर्दे हट जाते हैं। 'पी रटो मन' केवल एक पंक्ति नहीं, बल्कि जीवन को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का मंत्र है।

- वर्तमान की पुकार: जैसे चातक पक्षी केवल स्वाति नक्षत्र की बूंद के लिए प्यासा रहता है, वैसे ही भक्त हरि के नाम का प्यासा है। वह आने वाले कल की व्यर्थ चिंता और बीते कल के आंसुओं को छोड़कर, केवल उस 'परम रस' की खोज में है जिसके बिना जीवन की डाली सूखी हुई महसूस होती है।

## भजन 21

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
 तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
 हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
 हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।  
 पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।  
 रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।  
 प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।  
 चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

व्याख्या (भजन 21):

यह भजन जीवन की नश्वरता और वर्तमान में ईश्वर के साथ जुड़ने का संदेश देता है।

- सुपना और सजावट: लेखक प्रश्न करते हैं कि जब यह पूरा जीवन ही एक 'सुपना' (स्वप्न) है, तो मनुष्य इसे बाहरी आडंबरों से सजाने में अपनी ऊर्जा क्यों व्यर्थ करता है? स्वप्न कितना भी सुंदर क्यों न हो, जागने पर वह लुप्त हो जाता है।
- शांति का पता: वास्तविक 'चैन' (शांति) पाने का नुस्खा बहुत सरल बताया गया है—संसार की अनंत इच्छाओं (तृष्णा) को त्यागकर हरि के चरणों का आश्रय लेना।
- अज्ञान का निवारण: 'पी रटो मन' का मंत्र उस प्रकाश की तरह है जो अज्ञान के अंधेरे को काट देता है। जैसे चातक पक्षी केवल एक बूंद का आकांक्षी रहता है, वैसे ही मन जब केवल प्रभु का नाम रटने लगता है, तब उसे भविष्य की चिंताएं और बीते कल के आंसू नहीं सताते।

## भजन 22

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
 पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
 लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
 कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।  
 मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

व्याख्या (भजन 22):

इस भजन में मन के द्वंद्व और उस 'परम खिवैया' (ईश्वर) पर भरोसे का चित्रण है।

- चंचल मन और दर्शन की प्यास: भक्त का मन 'पागल' होकर इधर-उधर भटकता है, पर उसकी आत्मा केवल प्रभु के दर्शन के लिए 'रिमझिम' आंसू बहा रही है। यह विरह की वह अवस्था है जहाँ भक्त अपने ही मन को समझाने में असमर्थ महसूस करता है।
- अनंत और अशांत का अंतर: संसार की हलचलें 'लहरों' के समान हैं—अस्थायी और अशांत। इसके विपरीत, परमात्मा 'अनंत सागर' है जो गहराई में सदैव शांत रहता है। संत उसी शाश्वत शांति की पुकार करते हैं।
- भ्रम से मुक्ति: दुनिया को 'मृगतृष्णा' कहकर संबोधित किया गया है। विडंबना यह है कि जिसे हम खोज रहे हैं, वह 'प्रीतम' हमारे अत्यंत निकट है, फिर भी हमारी दृष्टि बाहरी माया में उलझी रहती है। अंत में, भक्त अपनी जीवन-नैया को भँवर से निकालने के लिए प्रभु को ही एकमात्र सहारा मानता है।

### भजन 23

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, प्यास बुझे ना मेरी।

शरण पडूँ अब चरणों में मैं, क्यों कर दी है देरी।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

व्याख्या (भजन 23):

यह भजन आत्मा की व्याकुलता और परमात्मा के प्रति पूर्ण शरणागति का मर्मस्पर्शी चित्रण है।

- संसार की व्यर्थता: यहाँ दुनिया को 'मृगतृष्णा' (मरीचिका) कहा गया है। जिस प्रकार एक प्यासा हिरण रेगिस्तान में पानी की तलाश में भागता है पर उसे केवल रेत मिलती है, वैसे ही मनुष्य संसार के विषयों में सुख खोजता है, पर उसकी 'प्यास' कभी नहीं बुझती।
- समर्पण की पुकार: भक्त स्वीकार करता है कि उसकी जीवन-रूपी नैया भँवर में फंसी है और केवल ईश्वर ही उसे पार लगा सकते हैं। वह स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और प्रभु को 'सृष्टि का मालिक' मानकर अपने अहंकार का त्याग कर देता है।

- प्रेम की शर्त: भक्त की कोई सांसारिक मांग नहीं है। वह केवल इतना चाहता है कि प्रभु उसे जहाँ चाहें ले जाएं, बस अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) उससे न फेरें। यह ईश्वरीय सान्निध्य की सर्वोच्च इच्छा है।

## भजन 24

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

व्याख्या (भजन 24):

इस भजन में भक्त अपने अज्ञान के अंधेरे से निकलने के लिए परमात्मा की आत्मीयता की गुहार लगाता है।

- आत्मीयता की भूख: जब जीवन में चारों ओर अंधेरा हो, तब मनुष्य को केवल एक सहारे की आवश्यकता होती है। भक्त कहता है—“बस एक बार कह तो दे कि तू मेरा है।” यह आश्वासन ही उसे संसार के समस्त दुखों से लड़ने की शक्ति देता है।
- मूक संवाद: 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) प्रभु को प्रसन्न करने के लिए भक्त के पास कोई विधि-विधान नहीं है। वह कहता है कि मेरी आँखों से जो आंसू बह रहे हैं, वे ही मेरी वाणी हैं और वे ही आपसे मेरे हृदय में बसने की विनती कर रहे हैं।
- साक्षी का खेल: भक्त देखता है कि यह दुनिया सपनों की तरह चंचल है, जहाँ इच्छाएं मचलती रहती हैं। वह उस 'दृष्टा' (ईश्वर) से प्रार्थना करता है कि परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हों, प्रभु का 'प्यार' उसके साथ सदा बना रहे।

## भजन 25

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

**व्याख्या (भजन 25):**

यह भजन भक्त के अटल विश्वास और ईश्वर के प्रति उसकी पूर्ण निर्भरता को रेखांकित करता है।

- अबल और संबल: भक्त स्वीकार करता है कि वह स्वयं शक्तिहीन (अबल) है और उसे संसार रूपी डगर पर चलने के लिए केवल ईश्वर के सहारे (संबल) की आवश्यकता है। जीवात्मा की तुलना उस बहते हुए दरिया से की गई है जो अपनी मंजिल नहीं जानता, बस बह रहा है, लेकिन उसे यह विश्वास है कि उसका आधार परमात्मा ही है।
- भय का अंत: जब ईश्वर को 'जीवन का माली' मान लिया जाता है, तो दुःख की 'काली रातें' डराना बंद कर देती हैं। भक्त कहता है कि प्रभु, आप संरक्षक हैं, इसलिए अब मुझे रुलाओ मत।
- भ्रम से मुक्ति: 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) का स्मरण करने से संसार के सारे मायावी भ्रम स्वतः नष्ट हो जाते हैं और हरि की अहैतुकी कृपा का अनुभव होने लगता है।

## भजन 26

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

**व्याख्या (भजन 26):**

यह भजन मन को भविष्य की चिंताओं से हटाकर वर्तमान में नाम-सुमिरन की ओर मोड़ने का संदेश देता है।

- निरंतर रटन: 'पी रटो मन' एक आह्वान है अज्ञान के अंधकार को मिटाने का। जिस प्रकार चातक पक्षी केवल स्वाति की बूंद के लिए पुकारता है, वैसे ही आत्मा को प्रभु नाम के लिए प्यासा होना चाहिए। बिना इस नाम-रस के, जीवन की डाली सूखी हुई और निष्प्राण रहती है।
- जीवन की वास्तविकता: हम भविष्य की अनिश्चितताओं में अपना वर्तमान खो देते हैं। लेखक याद दिलाते हैं कि जब यह जीवन ही एक 'सुपना' (स्वप्न) है, तो इसकी क्षणभंगुर सुंदरता को सजाने में समय क्यों नष्ट करना?

- परम शांति: मन की शांति (चैन) केवल तभी संभव है जब संसार की अनंत इच्छाएं (तृष्णा) शांत हों और हृदय में ईश्वर के लिए निस्वार्थ प्रेम जागे। चरणों में बैठने का अर्थ है पूर्ण समर्पण, जहाँ भक्त केवल दर्शन का अभिलाषी होता है।

## भजन 27

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

व्याख्या (भजन 27):

यह भजन मन के भटकाव और परमात्मा की स्थिरता के बीच के अंतर को बहुत ही सुंदर ढंग से स्पष्ट करता है।

- मन का स्वभाव: भक्त व्यथित है कि उसका मन 'पागल' होकर बाहरी विषयों में भटक रहा है और समझाने पर भी नहीं मानता। यह मन ही है जो हमें सत्य से दूर रखता है।
- सागर और लहर का दर्शन: यहाँ एक गहरा दार्शनिक संकेत है। संसार की परिस्थितियाँ 'लहरों' के समान हैं—अस्थायी, चंचल और पल-पल बदलने वाली। इसके विपरीत, परमात्मा उस 'अनंत सागर' की तरह है जो अपनी गहराई में सदैव शांत और स्थिर रहता है। संत उसी शाश्वत शांति को पुकारते हैं।
- समीपता का बोध: भक्त को इस बात का आभास है कि उसका 'प्रीतम' (ईश्वर) उसके अत्यंत पास है, परंतु संसार की 'मृगतृष्णा' (माया) उसे देखने नहीं देती। वह अपनी जीवन-नैया को भँवर से निकालने के लिए प्रभु को 'खिवैया' के रूप में पुकारता है और स्वयं को उनके चरणों का सेवक बनाना चाहता है।

## भजन 28

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

व्याख्या (भजन 28):

इस भजन में एक बालक जैसी सरलता और पूर्ण शरणागति का भाव झलकता है।

- पुत्रवत् अधिकार: भक्त साहस के साथ कहता है कि जब पूरे ब्रह्मांड का स्वामी स्वयं उसका पिता है, तो वह एक 'बालक' होकर क्यों रोए? वह ईश्वर से अपने नयनों में बसने की प्रार्थना करता है ताकि जीवन के सभी 'ताप' (कष्ट) मिट सकें।
- अनन्य भक्ति: भक्त की कोई अपनी शर्त नहीं है। वह कहता है कि प्रभु उसे जहाँ चाहें ले जाएं, बस अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) उससे न फेरें। यह अवस्था 'तव इच्छा पूर्ण भवतु' (आपकी इच्छा पूरी हो) की पराकाष्ठा है।
- संसार से विरक्ति: संसार को 'स्वप्निल' और 'दर्द बिखेरने वाला' कहा गया है। भक्त स्वीकार करता है कि उसे दुनियादारी की चतुर रीतियाँ नहीं आतीं। उसे केवल ईश्वर के प्यार की तलाश है, क्योंकि उसके बिना जीवन की राह 'दूभर' और 'अनजानी' लगती है। वह 'छलिया' (प्रभु) से छिपने के बजाय प्रकट होने की विनती करता है।

भजन 29

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

व्याख्या (भजन 29):

यह भजन आत्मा की गहन पुकार और परमात्मा के सान्निध्य की तड़प को व्यक्त करता है।

- अंधेरे में आश्वासन की खोज: जब भक्त को संसार में अज्ञान का 'अंधेरा' दिखाई देता है, तब वह केवल एक ही सहारा चाहता है—परमात्मा का यह कहना कि "तू मेरा है।" यह आत्मीयता भक्त के समस्त संशयों को समाप्त कर देती है।

- पूर्ण समर्पण: स्वयं को 'मन्द बुद्धि' मानकर ज्ञान की याचना करना अहंकार के विसर्जन का प्रतीक है। भक्त स्वयं को प्रभु का सेवक बनाना चाहता है ताकि वह उनके चरणों में रहकर अपने जीवन को सार्थक कर सके।
- मूक संवाद: भक्त 'चैतन्यघन' (चेतना के पुंज) से पूछता है कि वह उन्हें कैसे प्रसन्न करे? फिर वह अनुभव करता है कि उसके नेत्रों से बहने वाले प्रेम-अश्रु ही सबसे शक्तिशाली प्रार्थना हैं, जो पुकार रहे हैं कि प्रभु उसके हृदय (दिल) में निवास करें।
- स्वप्नवत संसार: संसार को 'मचलते हुए सपनों' की तरह बताया गया है, जहाँ सब कुछ अस्थायी है, जबकि ईश्वर केवल एक 'दृष्टा' (साक्षी) के रूप में सब देख रहे हैं।

### भजन 30

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

व्याख्या (भजन 30):

यह भजन निर्भयता, विश्वास और निरंतर सुमिरन की महिमा का गान करता है।

- संबल का सहारा: भक्त स्वीकार करता है कि वह 'अबल' (शक्तिहीन) है और उसे संसार के पथ पर चलने के लिए केवल ईश्वर के 'संबल' (सहारे) की आवश्यकता है। वह स्वयं को उस 'नाचते हुए दरिया' के समान पाता है जिसकी गति तो है, पर दिशा केवल ईश्वर के हाथ में है।
- निश्चिंतता और अभय: जब भक्त ईश्वर को 'जीवन का माली' स्वीकार कर लेता है, तो उसके भीतर का सारा भय मिट जाता है। उसे विश्वास है कि माली (ईश्वर) के रहते उसके जीवन-रूपी उपवन का अहित नहीं हो सकता, चाहे रातें कितनी भी 'काली' (कष्टदायी) क्यों न हों।
- स्मरण से भ्रम का नाश: जो निरंतर 'चैतन्यघन' का जप करता है, उसके जीवन से माया के सारे भ्रम स्वतः ही टूट जाते हैं। यह भजन अंततः ईश्वर की अहैतुकी कृपा और उनके सदा साथ होने के अटूट विश्वास पर विराम लेता है।

### भजन 31

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

आदि सत्य वह अन्त सत्य है, है यह जीवन रैन बसेरा।

क्यों भरमाये दुनिया तुमको, क्या है इसका मोल।  
आँखें मूंदो भीतर देखो, बजता अनहद ढोल।  
प्रेम सुधा का रस तुम पी लो, मिट जाये सब तृष्णा।  
हृदय बीच में जिसे बिठाया, वही राम वही कृष्णा।  
नयना बरसे जैसे सावन, याद तुम्हारी आये।  
कैसे तुमको पाऊँ प्रीतम, मनवा अति घबराये।

व्याख्या (भजन 31):

यह भजन बाह्य जगत से दृष्टि हटाकर अंतर्मुखी होने का एक प्रबल संदेश है।

- शाश्वत सत्य की पहचान: लेखक जीवन की क्षणभंगुरता को 'रैन बसेरा' कहकर स्पष्ट करते हैं। जो आदि और अंत में शेष रहता है, वही एकमात्र सत्य है। इस सत्य के सामने संसार की चमक-धमक का कोई मूल्य नहीं है।
- अनहद का संगीत: सत्य बाहर खोजने से नहीं, बल्कि इंद्रियों को समेटकर भीतर उतरने से मिलता है। जब साधक 'भीतर' देखता है, तो उसे उस ईश्वरीय शक्ति का अनुभव 'अनहद ढोल' (दिव्य ध्वनि) के रूप में होता है।
- तृष्णा का अंत: संसार की अनंत इच्छाएं केवल 'प्रेम सुधा' (ईश्वरीय प्रेम के अमृत) से ही शांत हो सकती हैं। हृदय में स्थापित सत्य ही राम और कृष्ण का वास्तविक स्वरूप है। विरह में बरसते नयन उसी 'प्रीतम' से एकाकार होने की व्याकुलता को दर्शाते हैं।

भजन 32

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।  
रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।  
चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।  
सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।  
पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

व्याख्या (भजन 32):

इस भजन में वर्तमान क्षण की महत्ता और नाम-स्मरण की अनिवार्यता पर बल दिया गया है।

- चातक की अनन्य भक्ति: जैसे चातक पक्षी अपनी प्यास के लिए केवल स्वाति नक्षत्र की ओर ताकता है, वैसे ही भक्त का मन प्रभु के नाम में लगा रहना चाहिए। भक्ति के रस के बिना जीवन का वृक्ष 'सूखी डाली' के समान है, जिसमें आनंद के फूल कभी नहीं खिलते।
- भविष्य का भ्रम: मनुष्य अक्सर 'आने वाले कल' के भय में आज के आंसू बहाता है। लेखक याद दिलाते हैं कि जब यह जीवन ही एक 'स्वप्न' है, तो इस अस्थायी स्वप्न को संवारने में सत्य को क्यों भूलना?
- क्षण भर की शांति: संसार की आपाधापी से मुक्ति का मार्ग 'हरि के चरणों' में है। जैसे ही मन समर्पण करता है, उसे उसी क्षण (क्षण में) वह चैन प्राप्त हो जाता है जिसे वह जन्मों से खोज रहा था। निरंतर नाम का रटना ही अज्ञान के अंधकार को मिटाने का एकमात्र उपाय है।

### भजन 33

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

व्याख्या (भजन 33):

यह भजन मन की चंचलता और आत्मा की गहरी प्यास के बीच के संघर्ष को दर्शाता है।

- मन बनाम आत्मा: भक्त का मन 'पागल' होकर बाहरी संसार में उलझा है, जबकि उसकी आत्मा दर्शन के लिए 'रिमझिम' अश्रु बहा रही है। यह द्वंद्व हर साधक के जीवन का हिस्सा है।
- साक्षी भाव: संसार की परिस्थितियाँ 'लहरों' की तरह हैं—कभी सुख की लहर, कभी दुःख की। ये लहरें पल-पल बदलती हैं, पर 'सागर' (परमात्मा) भीतर से सदैव शांत और अनंत रहता है। भक्त उसी शांति की पुकार करता है।
- भ्रम और सत्य: दुनिया को 'मृगतृष्णा' कहा गया है, जो प्यास बुझाने का केवल भ्रम पैदा करती है। भक्त को यह बोध है कि प्रीतम उसके पास ही हैं, पर माया के कारण वह उन्हें निहार नहीं पा रहा। अंत में, वह अपनी डगमगाती नैया को पार लगाने के लिए प्रभु को 'खिवैया' के रूप में पुकारता है।

### भजन 34

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।  
 मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।  
 ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।  
 जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।  
 स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
 जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

व्याख्या (भजन 34):

इस भजन में अगाध श्रद्धा और एक अबोध बालक जैसी निश्छल शरणागति के दर्शन होते हैं।

- अहंकार का विसर्जन: स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और 'सेवक' कहना इस बात का प्रतीक है कि भक्त ने अपनी सारी चतुराई ईश्वर के चरणों में छोड़ दी है। वह तर्क देता है कि जब सृष्टि का मालिक उसका पिता है, तो उसे रोने या चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।
- ताप का निवारण: भक्त चाहता है कि ईश्वर उसके नयनों में बस जाएं ताकि 'त्रिविध ताप' (शारीरिक, मानसिक और बाहरी कष्ट) समाप्त हो सकें। उसकी एकमात्र प्रार्थना है—प्रभु, आप जहाँ चाहें वहाँ रखें, बस अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) मुझ पर बनाए रखें।
- संसार से दूरी: भक्त स्वीकार करता है कि वह 'जग की रीति' (संसार के कायदे-कानून) नहीं जानता। उसे यह दुनिया एक ऐसे स्वप्न की तरह लगती है जिसने केवल दर्द दिया है। वह अपने जख्मों का मरहम केवल ईश्वरीय प्रेम में पाता है।

**भजन 35**

पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।  
 मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
 छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
 बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
 मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
 चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
 जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
 दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

व्याख्या (भजन 35):

यह भजन जीवन मार्ग की कठिनाइयों और ईश्वर की अनन्य शरण में जाने की तीव्र इच्छा का चित्रण है।

- कठिन मार्ग और पुकार: संसार की गलियाँ 'अनजानी' और मार्ग 'दूभर' (कठिन) हैं। भक्त अपने आराध्य को 'छलिया' कहकर पुकारता है और विनती करता है कि वह अब और न छिपे। जब चारों ओर अज्ञान का अंधेरा हो, तब केवल ईश्वर का यह आश्वासन कि "तू मेरा है", भक्त को शक्ति प्रदान करता है।
- पूर्ण समर्पण: भक्त अपना संपूर्ण जीवन और अपने आँसुओं का अर्घ्य प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है। वह स्वयं को प्रभु का सेवक बनाने की याचना करता है ताकि वह 'चैतन्यघन' (चेतना के पुंज) की सेवा में लीन रह सके।
- मूक प्रार्थना: यहाँ भक्त की आँखों से बहता हुआ नीर (आंसू) ही उसकी सबसे बड़ी वाणी है। वे आंसू पुकार रहे हैं कि प्रभु उसके हृदय में वास करें। वह ईश्वर को उस 'दृष्टा' के रूप में देखता है जो बिना कुछ कहे इस संसार के खेल को देख रहा है।

## भजन 36

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

व्याख्या (भजन 36):

यह भजन संसार की अनित्यता और ईश्वर के प्रति अटूट भरोसे का बहुत ही सुंदर वर्णन है।

- स्वप्नवत संसार: भक्त ईश्वर से प्रश्न करता है कि यह कैसी दुनिया है जहाँ केवल 'सुपने' (अस्थाई इच्छाएं) मचलते हैं। वह अपनी इच्छाओं को प्रभु की मर्जी में विलीन कर देता है और केवल उनका 'प्यार' चाहता है।
- अबल का संबल: जीवात्मा स्वयं को 'अबल' (शक्तिहीन बालक) मानती है और परमात्मा को 'संबल' (सहारा)। जैसे एक दरिया अपनी मंजिल जाने बिना बस बहता रहता है, वैसे ही भक्त केवल सुमिरन करते हुए आगे बढ़ना चाहता है।
- निर्भयता का भाव: जब यह विश्वास हो जाए कि ईश्वर ही 'जीवन के माली' हैं, तो फिर 'काली रातों' (संकटों) का डर समाप्त हो जाता है। माली कभी अपने पौधों का बुरा नहीं होने देता। अंततः, चैतन्य स्वरूप परमात्मा का जाप ही सारे भ्रमों से मुक्ति दिलाता है।

## भजन 37

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।  
हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।  
पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।  
रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।  
प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।  
चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।  
सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

व्याख्या (भजन 37):

यह भजन भ्रम की समाप्ति और नाम-स्मरण के प्रभाव का अद्भुत वर्णन है।

- भ्रम और कृपा: संसार में व्यक्ति कई भ्रमों (माया) में घिरा रहता है, लेकिन जैसे ही 'हरि कृपा' होती है, ये सारे पर्दे स्वतः ही गिर जाते हैं। भक्त की बस एक ही प्रार्थना है कि प्रभु का साथ कभी न छूटे।
- जीवन का रस: 'पी रटो मन' वह मंत्र है जो जीवन की सूखी डाली में रस भर देता है। लेखक कहते हैं कि जिस प्रकार चातक पक्षी केवल एक बूंद का आकांक्षी रहता है, वैसे ही मन जब तक नाम का रटन नहीं करता, तब तक जीवन में आनंद के फूल नहीं खिलते।
- वर्तमान का महत्व: हम आने वाले भविष्य की व्यर्थ चिंताओं में अपना 'आज' आंसुओं में बहा देते हैं। यह जानते हुए भी कि जीवन एक 'स्वप्न' है, हम इसे सजाने में लगे रहते हैं। मुक्ति तभी संभव है जब दिल में तृष्णा के बजाय केवल ईश्वर का प्यार जागे।

### भजन 38

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।  
मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।  
प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।  
तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

व्याख्या (भजन 38):

इस भजन में मन की शांति का मार्ग और प्रभु की समीपता का बोध कराया गया है।

- तत्काल शांति: शांति (चैन) कहीं दूर नहीं है; जैसे ही मनुष्य हरि के चरणों में समर्पित होता है, उसे उसी 'क्षण' में शांति का अनुभव होने लगता है। दर्शन की प्यास में आँखों का बरसना ही भक्ति की चरम अवस्था है।
- मन का संघर्ष: भक्त अपने 'पागल मन' से परेशान है जो लहरों की तरह अशांत है। लेकिन वह जानता है कि ईश्वर उस 'शांत सागर' की तरह है जहाँ पहुँचकर सारी हलचलें समाप्त हो जाती हैं।
- खोज और दर्शन: दुनिया की 'मृगतृष्णा' हमें बाहर भटकाती रहती है, जबकि 'प्यारे प्रीतम' तो हमारे भीतर ही, हमारे अत्यंत पास हैं। भक्त अपनी डगमगाती जीवन-नैया को पार लगाने के लिए प्रभु के सहारे की पुकार करता है।

### भजन 39

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

व्याख्या (भजन 39):

यह भजन पूर्ण शरणागति और भक्त के अटूट विश्वास का दस्तावेज़ है।

- खिवैया पर भरोसा: भक्त अपनी जीवन-नैया को संसार के भँवर में फँसा हुआ पाता है। वह स्वीकार करता है कि उसकी स्वयं की बुद्धि (मन्द बुद्धि) उसे पार नहीं लगा सकती, इसलिए वह उस 'परम नाविक' को पुकारता है।
- पुत्रवत अधिकार: यहाँ एक बहुत ही गहरा प्रश्न है—"जब संपूर्ण सृष्टि का स्वामी मेरा पिता है, तो मैं बालक होकर क्यों रोऊँ?" यह दुःख पर विजय पाने का आध्यात्मिक सूत्र है। भक्त चाहता है कि ईश्वर उसके नयनों में बसकर उसके सभी ताप (कष्ट) हर लें।
- समर्पण की शर्त: भक्त की कोई मांग नहीं है, बस एक ही प्रार्थना है कि प्रभु उसे जहाँ चाहें ले जाएं, बस अपनी कृपा-दृष्टि उससे न फेरें। उसे संसार की चतुर रीतियां नहीं आतीं, वह तो बस उस 'सुबेरे' (ज्ञान) की प्रतीक्षा में है जो उसे इस स्वप्निल दुनिया के दर्द से मुक्त कर दे।

### भजन 40

जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
 पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।  
 मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझेको अपनी शरण।  
 छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
 बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
 मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
 चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
 जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

**व्याख्या (भजन 40):**

इस भजन में भक्त की विरह वेदना और ईश्वर की आत्मीयता की तीव्र प्यास झलकती है।

- पीड़ा और मरहम: संसार ने जो जखम दिए हैं, भक्त उन्हें किसी इंसान को नहीं, बल्कि अपने 'छलिया' (ईश्वर) को दिखाना चाहता है। वह जानता है कि उसके दुखों का एकमात्र मरहम ईश्वरीय प्यार ही है।
- शरण की पुकार: जब चारों ओर अज्ञान का अंधेरा हो, तब भक्त केवल एक आश्वासन चाहता है कि प्रभु उसे अपना लें। वह अपना पूरा जीवन चरणों में अर्पित कर देता है।
- अश्रु रूपी वाणी: भक्त उस 'आनन्दघन' से पूछता है कि वह उन्हें कैसे प्रसन्न करे? फिर उसे बोध होता है कि उसकी आँखों से बहने वाले आंसू ही उसके दिल की असली भाषा हैं, जो केवल एक ही बात कह रहे हैं—"प्रभु, मेरे हृदय में वास करो।"

**भजन 41**

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
 ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।  
 तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।  
 बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।  
 दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।  
 सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।  
 छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।  
 डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

**व्याख्या (भजन 41):**

यह भजन साक्षी भाव और पूर्ण सुरक्षा के बोध का सुंदर मिश्रण है।

- साक्षी दृष्टा: भक्त ईश्वर को उस 'दृष्टा' के रूप में देखता है जो तटस्थ रहकर इस संसार के खेल को देख रहा है। जहाँ दुनिया में लोग इच्छाओं (सपनों) के पीछे तड़प रहे हैं, वहाँ भक्त अपनी डोर पूरी तरह प्रभु के हाथ में सौंप देता है—"मर्जी तुम्हारी, बस प्यार तुम्हारा।"
- अबल का संबल: जीवात्मा स्वयं को उस बालक के समान 'अबल' (निर्बल) मानती है जिसे पिता की उंगली थामने की चाह है। जैसे दरिया अपनी मंज़िल जाने बिना बस बहता रहता है, वैसे ही भक्त केवल इस विश्वास के साथ जीवन जीता है कि ईश्वर उसके साथ हैं।
- जीवन का माली: जब यह बोध हो जाए कि ईश्वर ही 'जीवन के माली' हैं, तो दुःख की 'काली रातें' (कठिनाइयाँ) डराना बंद कर देती हैं। माली कभी अपने बगीचे को उजड़ने नहीं देता, यही विश्वास भक्त को निर्भय कर देता है।

## भजन 42

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

व्याख्या (भजन 42):

इस भजन में नाम-स्मरण की शक्ति और संसार की अनित्यता का गहरा दर्शन छिपा है।

- भ्रम का अंत: 'चैतन्यघन' (चेतना के पुंज) का जाप करते ही संसार के सारे मायावी भ्रम स्वतः टूट जाते हैं। आँखों से बहते आंसू केवल एक ही याचना करते हैं कि उस 'हरि कृपा' का साथ कभी न छूटे।
- अमृत रस: लेखक समझाते हैं कि नाम के रस के बिना जीवन का वृक्ष 'सूखी डाली' की तरह है, जिसमें आनंद के फूल कभी नहीं खिलते। जैसे चातक केवल स्वाति नक्षत्र की बूंद का स्मरण करता है, वैसे ही आत्मा को नाम में लौ लगानी चाहिए।
- व्यर्थ सजावट: भविष्य की चिंता में रोना और इस 'स्वप्न' रूपी जीवन को बाहरी आडंबरों से सजाना व्यर्थ है। 'पी रटो मन' ही वह उपाय है जो अज्ञान के अंधेरे को काटकर वास्तविक प्रकाश की ओर ले जाता है।

## भजन 43

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।  
मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।  
प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

**व्याख्या (भजन 43):**

यह भजन मन की शांति और ईश्वर की व्याप्ति का बोध कराता है।

- तत्काल चैन: भक्त को यह दिव्य संदेश मिलता है कि संसार की 'तृष्णा' (अतृप्त इच्छाएं) ही अशान्ति का कारण हैं। जैसे ही कोई हृदय में प्रेम जगाकर हरि के चरणों का आश्रय लेता है, उसे उसी 'क्षण' में वह परमानंद मिल जाता है जिसे वह बाहर दूढ़ रहा था।
- अधीर मन: भक्त अपने चंचल मन से परेशान है जो समझाने पर भी नहीं मानता। उसकी आँखों में तो 'दर्शन' की प्यास है, पर मन अभी भी लहरों की तरह अशांत है।
- निकटता का विस्मरण: यहाँ लेखक एक गहरा सच बताते हैं कि ईश्वर 'पास' ही हैं, पर दुनिया की 'मृगतृष्णा' (माया) के कारण हम उन्हें देख नहीं पाते। संत इसी शाश्वत 'सागर' रूपी शांति को पुकारते हैं।

**भजन 44**

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।  
भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।  
मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।  
मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।  
मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।  
ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।  
जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

**व्याख्या (भजन 44):**

यह भजन पूर्ण आत्म-निवेदन और ईश्वर पर अटूट निर्भरता का प्रतीक है।

- खिवैया पर भरोसा: जीवन की नैया जब संसार के 'भँवर' (कठिनाइयों) में फंसकर डगमगाने लगती है, तब केवल ईश्वर ही वह 'खिवैया' (नाविक) हैं जो उसे पार लगा सकते हैं। भक्त अपनी सीमाओं को स्वीकार करते हुए उनसे ज्ञान की याचना करता है।
- पुत्रवत् अधिकार: "क्यों रोता मैं तेरा बालक"—यह पंक्ति भक्त के भीतर के अविश्वास को समाप्त कर देती है। जब पिता स्वयं ब्रह्मांड का स्वामी है, तो बालक को चिंता करने की क्या आवश्यकता?
- अतुल्य समर्पण: भक्त की कोई अपनी मंजिल नहीं है। वह कहता है—"मर्जी तेरी जहाँ ले चलो।" उसकी एकमात्र शर्त यह है कि प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि उससे न फेरें। वह संसार की चतुर रीतियों से अनजान है, वह तो बस अपने आराध्य की पुकार में ही आनंद पाता है।

## भजन 45

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

व्याख्या (भजन 45):

यह भजन विरह की उस अवस्था को दर्शाता है जहाँ भक्त संसार से थककर केवल ईश्वरीय प्रेम का अभिलाषी हो जाता है।

- संसार का दर्द: भक्त अनुभव करता है कि यह दुनिया एक 'स्वप्न' की तरह है जिसने केवल जख्म दिए हैं। वह उस 'सुबेरे' (ज्ञान के उदय) की प्रतीक्षा में है जो अभी तक ओझल है।
- छलिया की खोज: 'पथ दूभर' और गलियाँ 'अनजानी' हैं। भक्त अपने आराध्य को 'छलिया' कहकर पुकारता है, क्योंकि उसे कहीं चैन नहीं मिल रहा। उसे केवल एक ही मरहम चाहिए—ईश्वर का यह आश्वासन कि "तू मेरा है।"
- समर्पण: वह अपना जीवन चरणों में अर्पित कर देता है और 'चैतन्यघन' से पूछता है कि वह उन्हें कैसे प्रसन्न करे? यहाँ भक्त की व्याकुलता ही उसकी सबसे बड़ी पूजा बन गई है।

## भजन 46

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।  
 तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।  
 बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।  
 दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।  
 सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।  
 छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

व्याख्या (भजन 46):

यह भजन साक्षी भाव और पूर्ण सुरक्षा के बोध का एक अद्भुत समन्वय है।

- अश्रु रूपी प्रार्थना: आँखों से बहने वाले आँसुओं की अपनी भाषा है। वे शब्दहीन होकर भी प्रार्थना कर रहे हैं कि ईश्वर हृदय में वास करें।
- साक्षी का खेल: भक्त देखता है कि ईश्वर एक 'दृष्टा' की तरह शांत हैं, जबकि दुनिया सपनों और इच्छाओं के पीछे तड़प रही है। भक्त इस द्वंद्व को छोड़कर अपनी डोर प्रभु के हाथ में दे देता है—"ले चलो मर्जी जहाँ।"
- अटूट संबल: जीवात्मा स्वयं को 'अबल बालक' मानती है जिसे पिता के सहारे (संबल) की दरकार है। वह स्वयं को उस दरिया की तरह मानता है जो बस अपनी धुन में बह रहा है, क्योंकि उसे विश्वास है कि प्रभु उसके साथ हैं। जब ईश्वर 'माली' बनकर रक्षा करते हैं, तो दुःख की 'काली रातें' अपना भजन 47

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।  
 चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।  
 सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।  
 हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।  
 पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।  
 रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।  
 प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।  
 चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

व्याख्या (भजन 47):

यह भजन निर्भयता और परमात्मा के प्रति पूर्ण विश्वास का परिचायक है।

- जीवन के माली: जब भक्त यह स्वीकार कर लेता है कि उसका जीवन ईश्वर रूपी 'माली' के हाथों में है, तो उसका सारा डर समाप्त हो जाता है। उसे विश्वास है कि प्रभु उसे व्यर्थ नहीं रुलाएंगे।

- भ्रम की निवृत्ति: 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) का जाप करने से संसार के सारे मायावी पर्दे गिर जाते हैं और केवल हरि की कृपा शेष रह जाती है। भक्त की बस एक ही पुकार है कि प्रभु उसका साथ कभी न छोड़ें।
- नाम का अमृत: लेखक पुनः स्मरण कराते हैं कि नाम-रूपी रस के बिना जीवन 'सूखी डाली' की तरह है। भविष्य की चिंता में आंसू बहाना व्यर्थ है, क्योंकि यह जीवन केवल एक स्वप्न है।

## भजन 48

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
 तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
 हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
 रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
 पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
 लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
 कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।  
 मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

व्याख्या (भजन 48):

इस भजन में वर्तमान में जीने और ईश्वर की अनंत शांति से जुड़ने का संदेश है।

- क्षणभंगुरता का बोध: जीवन को 'सुपना' कहकर लेखक सावधान करते हैं कि जो अस्थाई है, उसे सजाने में अपनी ऊर्जा नष्ट न करो। वास्तविक 'चैन' संसार की वस्तुओं में नहीं, बल्कि हरि के चरणों में बैठने (समर्पण) में है।
- दर्शन की व्याकुलता: भक्त का हृदय दर्शन के लिए रो रहा है, पर उसका मन चंचल लहरों की तरह उसे भटका रहा है।
- अनंत सागर: यहाँ संसार की तुलना 'लहरों' से की गई है जो उठती-गिरती रहती हैं, जबकि परमात्मा वह 'अनंत सागर' है जो गहराई में पूर्णतः शांत है। संतों की पुकार इसी शाश्वत शांति को पाने के लिए है, न कि संसार की 'मृगतृष्णा' के पीछे भागने के लिए।
- खो देती हैं।

## भजन 49

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।  
 तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।  
 भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।  
 मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

**व्याख्या (भजन 49):**

यह भजन आत्म-बोध और पूर्ण शरणागति का एक अद्भुत संगम है।

- अज्ञान का पर्दा: भक्त को यह ज्ञान है कि उसका 'प्रीतम' (ईश्वर) उसके अत्यंत निकट है, फिर भी वह उसे निहार नहीं पा रहा। वह अपनी जीवन-नैया को संसार के भँवर में फँसा हुआ पाता है और प्रभु को 'खिवैया' के रूप में पुकारता है।
- अधिकार और समर्पण: भक्त साहस के साथ कहता है कि जब सकल सृष्टि का स्वामी उसका पिता है, तो वह एक असहाय 'बालक' की तरह क्यों रोए? वह चाहता है कि प्रभु उसके नयनों में बसकर उसके सभी मानसिक और शारीरिक कष्टों (ताप) को हर लें।
- इच्छा का विसर्जन: भक्त की अपनी कोई दिशा नहीं है; वह अपने 'नाविक' से कहता है कि उसे जहाँ चाहे ले चले, बस अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) उससे कभी न फेरे।

## भजन 50

जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

**व्याख्या (भजन 50):**

यह भजन संसार से विरक्ति और केवल ईश्वरीय प्रेम की आकांक्षा को स्वर देता है।

- दुनियादारी से विरक्ति: भक्त स्वीकार करता है कि उसे 'जग की रीति' (संसार की चालाकी) नहीं आती। वह तो बस अपने आराध्य को पुकारना जानता है। यह 'स्वप्निल दुनिया' केवल दर्द देने वाली है, जहाँ ज्ञान का 'सुबेरा' अभी तक छिपा हुआ है।

- छलिया की पुकार: जीवन का पथ बहुत 'दूभर' और कठिन है। भक्त अपने प्रभु को 'छलिया' कहकर उलाहना देता है कि उनके बिना कहीं चैन नहीं मिलता। वह अपनी रक्षा के लिए केवल ईश्वर की शरण चाहता है।
- आश्वासन की प्यास: जब चारों ओर अज्ञान का अंधेरा हो, तब भक्त केवल एक आश्वासन चाहता है कि प्रभु उसे अपना लें। वह अपना सर्वस्व—अपने प्राण और अपना जीवन—प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है।

## भजन 51

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।  
तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।  
बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।  
दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।  
सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

व्याख्या (भजन 51):

यह भजन भक्त के हृदय की कोमलता और ईश्वर की साक्षी अवस्था का चित्रण है।

- अश्रु ही आराधना: भक्त 'चैतन्यघन' (ज्ञान और आनंद के पुंज) से पूछता है कि उन्हें रिझाने की विधि क्या है? फिर वह स्वयं ही उत्तर पाता है कि नेत्रों से बहने वाले विरह के आसू ही सबसे बड़ी प्रार्थना हैं, जो पुकार रहे हैं कि प्रभु उसके हृदय में ही बस जाएं।
- सपनों का संसार: यहाँ दुनिया को एक ऐसे स्थान के रूप में देखा गया है जहाँ केवल 'सुपने' (अस्थाई इच्छाएं) मचलते हैं, जबकि ईश्वर केवल एक मौन 'दृष्टा' की तरह सब देख रहे हैं। भक्त इस उलझन से दूर केवल प्रभु के प्यार और मर्जी में अपनी खुशी पाता है।
- नृत्य करता दरिया: भक्त स्वयं को उस 'दरिया' की तरह मानता है जो अपनी मंजिल जाने बिना बस प्रभु की धुन में नाच रहा है। उसे केवल एक ही संबल (सहारा) चाहिए—परमात्मा का निरंतर साथ।

## भजन 52

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।  
डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।  
चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।  
सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

**व्याख्या (भजन 52):**

इस भजन में अभय और नाम-स्मरण के फल का बहुत सुंदर विवेचन किया गया है।

- माली का संरक्षण: जब भक्त यह मान लेता है कि ईश्वर उसके 'जीवन के माली' हैं, तो उसे 'काली रातों' (दुखों) का डर लगना बंद हो जाता है। वह प्रभु से विनती करता है कि अब उसे और न रुलाया जाए, क्योंकि उसने स्वयं को पूर्णतः अर्पित कर दिया है।
- भ्रम की निवृत्ति: प्रभु नाम का जाप करने से संसार के सारे मायावी भ्रम स्वतः नष्ट हो जाते हैं और केवल 'हरि कृपा' का अनुभव शेष रह जाता है। भक्त की एक ही पुकार है—"हरि, मेरा साथ न छोड़ना।"
- नाम का आधार: 'पी रटो मन' का मंत्र ही अज्ञान को काटने वाला है। बिना इस नाम-रस के जीवन की डाली सूखी रहती है। जैसे चातक पक्षी स्वाति की बूंद को नहीं भूलता, वैसे ही भक्त की आत्मा प्रभु-नाम को अपना एकमात्र आधार मानती है।

### भजन 53

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

**व्याख्या (भजन 53):**

यह भजन मनुष्य की व्यर्थ चिन्ताओं और मन के द्वंद्व पर चोट करता है।

- भविष्य का मोह: हम अक्सर 'आने वाले कल' के अनजाने भय में अपने वर्तमान के आनंद को आंसुओं में बहा देते हैं। लेखक याद दिलाते हैं कि जब यह जीवन ही एक 'स्वप्न' है, तो इसके अस्थाई रूप को सजाने की इतनी व्याकुलता क्यों?

- परम शांति का मार्ग: शांति (चैन) कोई भविष्य की उपलब्धि नहीं है; जैसे ही कोई अपनी सांसारिक तृष्णाओं को त्यागकर हरि के चरणों में बैठा है, उसे उसी 'क्षण' में शांति प्राप्त हो जाती है।
- अशांत लहरें: संसार की परिस्थितियाँ 'लहरों' के समान हैं—चंचल और अस्थायी। इसके विपरीत, परमात्मा वह 'अनंत सागर' है जो गहराई में पूर्णतः शांत है। संत उसी शाश्वत शांति को पुकारते हैं।

## भजन 54

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

व्याख्या (भजन 54):

इस भजन में अज्ञान के पर्दे को हटाने और ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता का संदेश है।

- निकट का विस्मरण: विडंबना यह है कि जिसे हम खोज रहे हैं, वह 'प्रीतम' हमारे अत्यंत निकट है, फिर भी दुनिया की 'मृगतृष्णा' (माया) हमें बाहर भटकाती रहती है। भक्त स्वीकार करता है कि उसकी जीवन-नैया भवर में है और प्रभु ही एकमात्र सहारा हैं।
- पुत्रवत अधिकार: "क्यों रोता मैं तेरा बालक"—यह पंक्ति भक्त के विश्वास को और दृढ़ करती है। जब पिता स्वयं सृष्टि का स्वामी है, तो बालक को चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।
- अनन्य प्रार्थना: भक्त की कोई अपनी शर्त नहीं है। वह कहता है कि प्रभु उसे जहाँ चाहें ले जाएं, बस अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) उससे न फेरें। यह अवस्था 'अहं' के पूर्ण विसर्जन की है।

## भजन 55

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

**व्याख्या (भजन 55):**

यह भजन आत्मा की उस पुकार को व्यक्त करता है जब वह संसार के छलावे से थककर अपने असली घर (परमात्मा) की ओर लौटना चाहती है।

- छलावे से मुक्ति: भक्त अनुभव करता है कि संसार ने उसे 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर सत्य से दूर रखा है। वह अब उस 'नाविक' (ईश्वर) से विनती करता है कि उसे इस किनारे से ले चले।
- दुनिया का दर्द: यह संसार एक ऐसे स्वप्न की तरह है जिसने केवल जख्म दिए हैं। भक्त को दुनियादारी की चतुर रीतियाँ नहीं आतीं, वह तो बस एक बालक की तरह अपने पिता को पुकार रहा है (टेरना)।
- आश्वासन की शक्ति: 'दूभर पथ' और 'अंधेरे' के बीच भक्त को किसी धन-दौलत की चाह नहीं है। वह केवल ईश्वर के मुख से यह सुनना चाहता है—"तू मेरा है।" यह शब्द ही उसके लिए सबसे बड़ा संबल है।

**भजन 56**

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

**व्याख्या (भजन 56):**

इस भजन में भक्त की विनम्रता और परमात्मा की व्यापकता का सुंदर चित्रण है।

- हृदय का निवास: भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' मानकर अपनी चतुराई का त्याग कर देता है। वह पूछता है कि उस 'आनन्दघन' को कैसे प्रसन्न किया जाए? फिर उसे आभास होता है कि उसके विरह के अश्रु ही सबसे श्रेष्ठ भाषा हैं, जो प्रभु को हृदय में बसने का निमंत्रण दे रहे हैं।
- साक्षी और खेल: ईश्वर एक 'दृष्टा' की तरह शांत हैं, जबकि दुनिया सपनों के पीछे मचल रही है। भक्त इस द्वंद्व में पड़ने के बजाय स्वयं को 'अबल बालक' मानकर केवल प्रभु के प्यार और संबल (सहारे) की याचना करता है।

- अज्ञात की यात्रा: जीवात्मा को उस 'नाचते हुए दरिया' के समान बताया गया है जो नहीं जानता कि उसकी धारा कहाँ जा रही है, पर उसे यह अटूट विश्वास है कि वह जिसकी धारा है, वही उसे सही दिशा में ले जाएगा।

## भजन 57

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।  
 छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।  
 डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।  
 चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।  
 सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।  
 हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।  
 पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।  
 रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

व्याख्या (भजन 57):

यह भजन अटूट विश्वास और नाम-स्मरण के प्रताप को रेखांकित करता है।

- अटूट साथ का बोध: भक्त इस दृढ़ विश्वास के साथ सुमिरन करता है कि ईश्वर हर क्षण उसके साथ हैं। जब आँखों में प्रभु की छवि बसी हो, तो बाहर की 'काली रातें' (कष्ट) डराना बंद कर देती हैं। ईश्वर को 'जीवन का माली' मानना पूर्ण सुरक्षा की भावना देता है।
- भ्रम का विसर्जन: 'चैतन्यघन' का जाप करने से संसार के सारे मिथ्या भ्रम नष्ट हो जाते हैं और केवल ईश्वरीय कृपा का अनुभव शेष रहता है।
- नाम का रस: जैसे बिना जल के डाली सूख जाती है, वैसे ही बिना 'नाम-रस' के जीवन नीरस रहता है। लेखक 'पी रटो मन' के माध्यम से अज्ञान के अंधेरे को मिटाने और जीवन में आनंद के फूल खिलाने का मार्ग सुझाते हैं।

## भजन 58

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।  
 चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।  
 सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
 तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
 हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

**व्याख्या (भजन 58):**

इस भजन में वर्तमान में जीने की कला और मन की व्याकुलता का वर्णन है।

- चातक जैसी लगन: भक्त की तुलना चातक से की गई है, जो अपनी प्यास के लिए केवल एक लक्ष्य रखता है। लेखक चेतावनी देते हैं कि हम आने वाले कल की व्यर्थ चिंताओं में आज के आंसू बहाते हैं, जबकि यह जीवन केवल एक स्वप्न है।
- क्षण भर की शांति: संसार की अंतहीन 'तृष्णा' (प्यास) को छोड़कर जैसे ही कोई प्रभु के चरणों की शरण लेता है, उसे उसी 'क्षण' में परम शांति प्राप्त हो जाती है।
- मन का सागर: भक्त दर्शन के लिए व्याकुल है, पर उसका मन चंचल लहरों की तरह अशांत है। वह पुकारता है कि उस 'अनंत और शांत सागर' (परमात्मा) को कहाँ खोजे, जहाँ पहुँचकर सारी लहरें शांत हो जाएं।

**भजन 59**

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

**व्याख्या (भजन 59):**

यह भजन आत्मा की व्याकुलता और परमात्मा की सर्वव्यापकता का अद्भुत चित्रण है।

- सन्तों की पुकार: सन्त जानते हैं कि परमात्मा कहीं दूर नहीं, फिर भी विरह में वे उन्हें पुकारते हैं। संसार को 'मृगतृष्णा' कहा गया है, जो केवल प्यास का भ्रम पैदा करती है। सत्य तो यह है कि 'प्रीतम' हमारे अत्यंत निकट हैं, बस हमारी दृष्टि पर अज्ञान का पर्दा है।
- पूर्ण निर्भरता: जब जीवन की नैया दुखों के भँवर में फँस जाती है, तब अपनी बुद्धि काम नहीं आती। भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और प्रभु का 'सेवक' मानकर सारा भार उन्हीं पर छोड़ देता है।

- पुत्रवत अधिकार: भक्त अपने ईश्वर को याद दिलाता है कि वह उनका 'बालक' है। एक बालक को रोने की क्या आवश्यकता जब उसका पिता स्वयं सृष्टि का स्वामी हो? वह केवल प्रभु के नयनों में बसने की प्रार्थना करता है ताकि जीवन के संताप मिट सकें।

## भजन 60

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।  
 ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।  
 जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।  
 स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
 जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
 पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।  
 मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
 छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

व्याख्या (भजन 60):

इस भजन में भक्त की अनन्य शरणागति और सांसारिक माया से थकान का भाव झलकता है।

- मर्जी का समर्पण: भक्त की अपनी कोई शर्त नहीं है—"जहाँ ले चलो"। उसकी एकमात्र चाह यह है कि प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) उससे न फेरें। वह स्वीकार करता है कि संसार ने उसे 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर भटकाया है।
- दुनिया का दर्द: यह स्वप्न जैसी दुनिया केवल दर्द देने वाली है। भक्त को दुनियादारी की चतुर रीतियां नहीं आतीं, वह तो बस 'सुबेरे' (ज्ञान के उदय) की प्रतीक्षा में रो रहा है। वह अपने 'जख्म' (पीड़ा) केवल अपने आराध्य को दिखाना चाहता है।
- एक आश्वासन की चाह: जीवन का मार्ग 'दूभर' और अंधेरे से भरा है। इस विकट स्थिति में भक्त केवल एक शब्द सुनना चाहता है—कि प्रभु उसे अपना लें। वह अपना सर्वस्व—अपने प्राण और अपनी शरण—परमात्मा को सौंप देता है।

## भजन 61

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
 मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
 चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
 जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
 दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

**व्याख्या (भजन 61):**

यह भजन भक्त की विनम्रता और परमात्मा की मौन उपस्थिति का बहुत ही गहरा चित्रण है।

- अश्रु रूपी संवाद: भक्त अनुभव करता है कि उसकी आँखों से बहने वाला प्रेम-अश्रु ही सबसे शक्तिशाली प्रार्थना है। वह 'चैतन्यघन' से पूछता है कि उन्हें कैसे रिझाए, जबकि उसके आंसू पहले ही प्रभु को हृदय में वास करने का निमंत्रण दे चुके हैं।
- साक्षी भाव: यहाँ संसार को 'मचलते हुए सपनों' की तरह बताया गया है, जहाँ लोग इच्छाओं के पीछे तड़प रहे हैं। परमात्मा एक 'दृष्टा' की तरह सब देख रहे हैं। भक्त इस मायावी खेल में उलझने के बजाय स्वयं को प्रभु का 'सेवक' और 'अबल बालक' मानकर केवल उनका 'संबल' (सहारा) चाहता है।
- इच्छा का त्याग: भक्त की अपनी कोई मंजिल नहीं है; वह प्रभु की मर्जी में अपनी मर्जी मिला देता है और केवल उनके निरंतर प्यार की याचना करता है।

**भजन 62**

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

**व्याख्या (भजन 62):**

इस भजन में अभय, निरंतर सुमिरन और अज्ञान की निवृत्ति का दिव्य संदेश है।

- नाचता हुआ दरिया: भक्त स्वयं को उस 'नाचते हुए दरिया' के समान पाता है जिसे अपनी दिशा का ज्ञान तो नहीं, पर उसे यह अटूट विश्वास है कि वह जिसका अंश है, वही उसे अपनी मंजिल तक ले जाएगा। वह हर पल प्रभु के साथ होने का अनुभव करता है।
- माली का भरोसा: जब आँखों में ईश्वर की छवि बसी हो, तो दुःख की 'काली रातें' अपना डर खो देती हैं। भक्त ईश्वर को 'जीवन का माली' कहकर स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है, क्योंकि माली कभी अपने उपवन का अहित नहीं होने देता।

- भ्रम की समाप्ति: 'चैतन्यघन' के जाप से संसार के सारे मायावी भ्रम स्वतः टूट जाते हैं और केवल हरि की कृपा शेष रह जाती है। लेखक 'पी रटो मन' के माध्यम से अज्ञान के अंधेरे को काटकर वास्तविक प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रेरणा देते हैं।

### भजन 63

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

व्याख्या (भजन 63):

यह भजन जीवन की नीरसता को दूर करने और वर्तमान में जीने का गहरा संदेश देता है।

- नाम का रस: लेखक कहते हैं कि जिस प्रकार बिना जल के पेड़ की डाली सूख जाती है, वैसे ही ईश्वरीय नाम के बिना जीवन शुष्क रहता है। आत्मा को उस 'चातक' पक्षी की तरह होना चाहिए जो केवल अपनी प्यास बुझाने के लिए स्वाति की बूंद (परमात्मा) को रटता रहता है।
- वर्तमान का महत्व: हम अक्सर भविष्य के अनजाने भय में अपने 'आज' को आंसुओं में डुबो देते हैं। जीवन को 'स्वप्न' मानकर उसे बाहरी आडंबरों से सजाने के बजाय, उसे भीतर से सजाना चाहिए।
- शांति का सूत्र: 'तृष्णा' (अतृप्त इच्छाएं) ही अशान्ति का मूल हैं। जैसे ही मनुष्य हरि के चरणों में बैठता है (समर्पण करता है), उसे उसी क्षण (क्षण में) वह चैन मिल जाता है जिसे वह जन्मों से खोज रहा था।

### भजन 64

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

व्याख्या (भजन 64):

इस भजन में मन के द्वंद्व और परमात्मा की अगाध शांति का बहुत ही सुंदर चित्रण है।

- सागर और लहर: संसार की परिस्थितियाँ चंचल 'लहरों' की तरह हैं जो आती-जाती रहती हैं। परंतु परमात्मा वह 'अनंत सागर' है जो भीतर से सदैव शांत रहता है। संत उसी शाश्वत शांति को पुकारते हैं।
- निकटता का बोध: अज्ञान के कारण हम ईश्वर को दूर समझते हैं, जबकि वे हमारे अत्यंत निकट (पास) हैं। दुनिया की 'मृगतृष्णा' (माया) हमें बाहर भटकाती रहती है, जिससे हम अपने भीतर के प्रीतम को नहीं देख पाते।
- पुत्रवत अधिकार: जब जीवन की नैया भंवर में फँस जाती है, तब अपनी बुद्धि काम नहीं आती। भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और 'सेवक' मानकर सारा भार 'सृष्टि के मालिक' (पिता) पर छोड़ देता है। एक बालक को रोने की क्या आवश्यकता जब उसका पिता स्वयं सर्वशक्तिमान हो?

## भजन 65

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।

व्याख्या (भजन 65):

यह भजन एक भक्त की उस पुकार को दर्शाता है जहाँ वह संसार की चतुराई से थककर ईश्वर के प्रेम में विश्राम चाहता है।

- ताप से मुक्ति: भक्त प्रार्थना करता है कि ईश्वर उसके नेत्रों में बस जाएं, क्योंकि जब भीतर परमात्मा का वास होता है, तो संसार के त्रिविध ताप (कष्ट) स्वतः मिट जाते हैं। उसकी एकमात्र शर्त यह है कि प्रभु उसे जहाँ चाहें ले जाएं, बस अपनी कृपा-दृष्टि (नयन) उससे न फेरें।
- संसार का छलावा: भक्त अनुभव करता है कि संसार ने उसे 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर भटकाया है। वह स्वीकार करता है कि उसे दुनियादारी की 'जग रीति' नहीं आती; वह तो बस एक बालक की तरह अपने प्रभु को 'टेरना' (पुकारना) जानता है।

- छलिया की खोज: जीवन का मार्ग 'दूभर' और अंधेरे से भरा है। भक्त अपने दुखों के जख्म किसी और को नहीं, बल्कि अपने 'छलिया' को दिखाना चाहता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि केवल उनका प्यार ही उसे शांति दे सकता है।

## भजन 66

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

व्याख्या (भजन 66):

इस भजन में पूर्ण शरणागति और भक्त के हृदय की कोमलता का अद्भुत वर्णन है।

- एक आश्वासन की शक्ति: जब चारों ओर अज्ञान और अनिश्चितता का अंधेरा हो, तब भक्त को किसी धन-दौलत की नहीं, बल्कि ईश्वर के केवल एक शब्द की चाह होती है—"तू मेरा है।" यह शब्द ही उसे अंधकार से निकालने के लिए पर्याप्त है।
- अहंकार का विसर्जन: स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और 'सेवक' कहना भक्त की निरहंकार अवस्था को दर्शाता है। वह 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) से पूछता है कि उन्हें कैसे प्रसन्न किया जाए?
- अश्रु और साक्षी: आँखों से बहने वाले आँसू ही शब्दहीन होकर प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभु हृदय में वास करें। जहाँ दुनिया 'मचलते हुए सपनों' के पीछे भाग रही है, वहाँ भक्त केवल ईश्वर की मर्जी और उनके प्यार में ही अपनी सार्थकता पाता है।

## भजन 67

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

**व्याख्या (भजन 67):**

यह भजन भक्त के अटल विश्वास और ईश्वर के प्रति उसकी अटूट निर्भरता को दर्शाता है।

- अबल का संबल: भक्त स्वीकार करता है कि वह स्वयं में शक्तिहीन (अबल) है और उसे हर कदम पर ईश्वर के सहारे (संबल) की आवश्यकता है। वह उस दरिया के समान है जो केवल प्रभु की प्रेरणा से नाचता हुआ बह रहा है, बिना यह जाने कि उसका मार्ग उसे कहाँ ले जाएगा। उसे बस यह विश्वास है कि "तुम साथ हो।"
- जीवन का माली: जब साधक को यह बोध हो जाता है कि उसका जीवन ईश्वर रूपी 'माली' के हाथों में है, तो दुःख की 'काली रातें' उसे नहीं डरतीं। उसे विश्वास है कि माली अपने बगीचे का कभी अहित नहीं होने देगा।
- भ्रम की निवृत्ति: 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) का निरंतर जाप करने से माया के सारे भ्रम स्वतः मिट जाते हैं। भक्त केवल यही याचना करता है कि प्रभु का साथ और उनकी कृपा सदा बनी रहे।

## भजन 68

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

**व्याख्या (भजन 68):**

इस भजन में 'नाम-स्मरण' की महिमा और संसार की अनित्यता का अद्भुत दर्शन समाहित है।

- नाम का आधार: लेखक कहते हैं कि अज्ञान के अंधेरे को काटने का एकमात्र उपाय 'नाम-रटन' (पी रटो मन) ही है। जिस प्रकार बिना जल के पेड़ की डाली सूख जाती है, वैसे ही ईश्वरीय नाम के रस के बिना जीवन नीरस और अर्थहीन रहता है।

- वर्तमान की उपेक्षा: हम अक्सर आने वाले भविष्य की व्यर्थ चिंताओं में अपना 'आज' आंसुओं में बहा देते हैं। जब यह पूरा जीवन ही एक 'स्वप्न' है, तो इस नाशवान संसार को बाहरी रूप से सजाने में ऊर्जा क्यों नष्ट करना?
- परम शांति: 'तृष्णा' (इच्छाएं) ही अशांति की जननी हैं। जैसे ही कोई ईश्वर के चरणों में पूर्ण समर्पण करता है, उसे उसी 'क्षण' में वह मानसिक शांति और चैन मिल जाता है जिसकी तलाश में वह वर्षों से भटक रहा था।

## भजन 69

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

व्याख्या (भजन 69):

यह भजन मन के संघर्ष और सत्य की पहचान का सुंदर चित्रण है।

- चंचल मन और शांत सागर: भक्त अपने 'पागल मन' से परेशान है जो संसार की चंचल लहरों की तरह उठता-गिरता रहता है। इसके विपरीत, परमात्मा वह 'शांत सागर' है जहाँ पहुँचकर सारी हलचल समाप्त हो जाती है। संत इसी शाश्वत शांति की पुकार करते हैं।
- पास होकर भी दूर: लेखक यहाँ एक बड़ा सत्य उजागर करते हैं कि ईश्वर हमारे अत्यंत निकट (पास) हैं, पर दुनिया की 'मृगतृष्णा' (माया) के कारण हम उन्हें देख नहीं पाते।
- खिवैया पर भरोसा: जब जीवन-नैया संसार के भँवर में फँस जाती है, तब अपनी बुद्धि काम नहीं आती। भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' मानकर प्रभु के चरणों में जान और सेवा की याचना करता है।

## भजन 70

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।  
स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।

व्याख्या (भजन 70):

इस भजन में भक्त की गहरी विरह-वेदना और अटूट विश्वास की अभिव्यक्ति है।

- पुत्रवत अधिकार: "जब सृष्टि का मालिक मेरा पिता है, तो मैं क्यों रोऊँ?"—यह पंक्ति भक्त के साहस और ईश्वर के प्रति उसके अधिकार को दर्शाती है। वह केवल यह चाहता है कि प्रभु उसके नेत्रों में बसकर उसके जीवन के सारे 'ताप' (कष्ट) हर लें।
- माया का छलावा: भक्त अनुभव करता है कि संसार ने उसे 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर भटकाया है। उसे दुनियादारी की चतुर रीतियाँ नहीं आतीं, वह तो बस एक बालक की तरह अपने प्रभु को 'टेरना' (पुकारना) जानता है।
- अंधेरे में प्रकाश की खोज: यह दुनिया एक ऐसे स्वप्न की तरह है जिसने केवल जख्म दिए हैं। 'पथ दूभर' हैं और कहीं चैन नहीं है। भक्त अपने इन जख्मों का मरहम केवल ईश्वरीय प्यार में ढूँढता है।

भजन 71

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

व्याख्या (भजन 71):

यह भजन आत्मा की गहन पुकार और प्रभु के साथ एकत्व की चाह को दर्शाता है।

- एक आश्वासन की शक्ति: जब जीवन में अज्ञान और कठिनाइयों का अंधेरा छाया हो, तब भक्त को केवल एक ही सहारे की आवश्यकता होती है—प्रभु का यह कहना कि "तू मेरा है।" यह शब्द ही उसे संसार के सागर से पार लगाने के लिए पर्याप्त है।

- अश्रु रूपी आमंत्रण: भक्त 'चैतन्यघन' से पूछता है कि उन्हें कैसे प्रसन्न किया जाए? फिर उसे स्वयं बोध होता है कि उसकी आँखों से बहने वाला प्रेम का जल ही वास्तव में प्रभु को हृदय में बसने का निमंत्रण दे रहा है।
- मौन दृष्टा: भक्त देखता है कि ईश्वर एक साक्षी (दृष्टा) की तरह शांत हैं, जबकि दुनिया अस्थायी सपनों और इच्छाओं के पीछे भाग रही है। वह इस मायावी खेल में उलझने के बजाय प्रभु का सेवक बनने की याचना करता है।

## भजन 72

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

व्याख्या (भजन 72):

इस भजन में अभय, समर्पण और निरंतर सुमिरन का दिव्य संदेश निहित है।

- मर्जी का समर्पण: भक्त ने अपनी डोर पूरी तरह प्रभु के हाथ में सौंप दी है—“जहाँ ले चलो”। वह स्वयं को एक निर्बल (अबल) बालक मानता है जिसे पिता के संबल (सहारे) की आवश्यकता है। जैसे दरिया अपनी मंजिल जाने बिना बस बहता रहता है, वैसे ही भक्त प्रभु के प्रेम में मगन होकर जीवन यात्रा कर रहा है।
- जीवन का माली: जब साधक को यह विश्वास हो जाता है कि उसका जीवन ईश्वर रूपी 'माली' के संरक्षण में है, तो उसे दुःख की 'काली रातों' का डर नहीं रहता। उसे पता है कि माली अपने उपवन का कभी अहित नहीं होने देगा।
- भ्रम की निवृत्ति: 'चैतन्यघन' का जाप करने से माया के सारे भ्रम स्वतः टूट जाते हैं और भक्त को केवल हरि की कृपा का अनुभव शेष रह जाता है।

## भजन 73

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।  
सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

व्याख्या (भजन 73):

यह भजन नाम-स्मरण की महिमा और वर्तमान क्षण में जीने की कला का अद्भुत दर्शन है।

- अज्ञान का नाश: भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है कि उसका साथ कभी न छूटे। 'पी रटो मन' वह जादुई मंत्र है जो अज्ञान के सघन अंधकार को काटकर ज्ञान का प्रकाश लाता है।
- नाम का रस: लेखक चेतावनी देते हैं कि प्रभु-नाम के रस के बिना जीवन 'सूखी डाली' की तरह है, जिसमें आनंद के फूल कभी नहीं खिल सकते। जिस तरह चातक पक्षी केवल एक बूंद का आकांक्षी रहता है, वैसे ही मन को नाम में लौ लगानी चाहिए।
- स्वप्निल संसार: हम अक्सर भविष्य की व्यर्थ चिंताओं में अपना 'आज' आंसुओं में बहा देते हैं। जब यह पूरा जीवन ही एक स्वप्न (सुपना) है, तो इसे बाहरी रूप से सजाने के बजाय अंतर्मन को प्रभु प्रेम से सजाना चाहिए। 'चैन' कहीं बाहर नहीं, बल्कि हरि के चरणों में बैठने (समर्पण) में है।

भजन 74

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।  
मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।  
प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।  
तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।  
भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

व्याख्या (भजन 74):

इस भजन में भक्त के हृदय की व्याकुलता और ईश्वर की समीपता का चित्रण किया गया है।

- मन का द्वंद्व: भक्त की आँखें दर्शन के लिए तरस रही हैं, पर उसका मन चंचल लहरों की तरह उसे भटका रहा है। परमात्मा को 'शांत और अनंत सागर' कहा गया है, जहाँ पहुँचकर मन की चंचलता समाप्त हो जाती है।

- भ्रम और सत्य: संसार को 'मृगतृष्णा' (मृग मरीचिका) बताया गया है जो हमें प्यास का भ्रम तो देती है पर प्यास बुझाती नहीं। विडंबना यह है कि जिसे हम बाहर ढूँढ रहे हैं, वह 'प्रीतम' हमारे अत्यंत निकट (पास) हैं।
- अंतिम सहारा: जब जीवन की नैया दुखों के भँवर में फँसकर डगमगाने लगती है, तब अपनी बुद्धि काम नहीं आती। भक्त केवल उस 'परम खिवैया' (ईश्वर) को पुकारता है, जो उसे इस संसार सागर से पार लगा सके।

## भजन 75

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
 सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।  
 मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।  
 मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।  
 ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।  
 जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।  
 स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
 जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

व्याख्या (भजन 75):

यह भजन पूर्ण आत्म-समर्पण और भक्त के अटूट विश्वास का दस्तावेज़ है।

- अधिकार और शरणागति: भक्त अपनी सीमाओं (मन्द बुद्धि) को स्वीकार करते हुए ज्ञान की याचना करता है। वह ईश्वर को याद दिलाता है कि जब पूरे ब्रह्मांड का स्वामी उसका पिता है, तो एक बालक के रूप में उसे दुखी होने का कोई अधिकार नहीं है।
- ताप की निवृत्ति: वह चाहता है कि प्रभु उसके नेत्रों में बस जाएं ताकि जीवन के सभी कष्ट (ताप) स्वतः समाप्त हो जाएं। उसकी एकमात्र प्रार्थना है कि प्रभु उसे जहाँ चाहें ले जाएं, बस अपनी कृपा-दृष्टि उससे न फेरें।
- संसार का विस्मरण: भक्त स्वीकार करता है कि उसे दुनियादारी की 'जग रीति' नहीं आती। उसे अनुभव होता है कि संसार ने उसे अब तक छला है, और अब वह केवल प्रभु के प्रेम का अभिलाषी है।

## भजन 76

पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।  
 मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
 छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
 बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

**व्याख्या (भजन 76):**

इस भजन में भक्त की विरह वेदना और ईश्वर की समीपता की तीव्र प्यास झलकती है।

- छलिया की खोज: जीवन का मार्ग 'दूभर' और अनजाना है, जहाँ पग-पग पर भटकाव है। भक्त अपने 'छलिया' को पुकारता है क्योंकि उनके बिना उसे कहीं चैन नहीं मिलता।
- आश्वासन की शक्ति: जब अज्ञान का अंधेरा चारों ओर छाया हो, तब भक्त को केवल एक ही मरहम चाहिए—प्रभु का यह आश्वासन कि "तू मेरा है।" वह अपना पूरा जीवन चरणों में अर्पित कर देता है।
- अश्रु रूपी संवाद: भक्त पूछता है कि वह उस 'आनन्दघन' को कैसे प्रसन्न करे? फिर उसे बोध होता है कि उसकी आँखों से बहने वाला जल ही सबसे श्रेष्ठ भाषा है, जो प्रभु को हृदय में बसने का निमंत्रण दे रही है। परमात्मा एक 'दृष्टा' की तरह शांत हैं, और भक्त केवल उनकी सेवा में ही अपना कल्याण देखता है।

**भजन 77**

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

**व्याख्या (भजन 77):**

यह भजन संसार की क्षणभंगुरता और ईश्वर की सतत उपस्थिति का बोध कराता है।

- सपनों का संसार: यहाँ दुनिया को एक ऐसे स्थान के रूप में देखा गया है जहाँ केवल 'सुपने' (अस्थाई इच्छाएं) मचलते हैं। भक्त इस मायावी खेल में उलझने के बजाय प्रभु की मर्जी को सर्वोपरि मानता है।
- अबल का संबल: भक्त स्वयं को 'अबल' (निर्बल) बालक मानकर ईश्वर से 'संबल' (सहारा) मांगता है। वह उस दरिया के समान है जो अपनी मंजिल जाने बिना बस प्रभु की धुन में नाच रहा है, क्योंकि उसे विश्वास है कि उसका आधार परमात्मा ही है।

- अभय दान: जब आँखों में प्रभु की छवि बसी हो, तो बाहर का अंधकार डरा नहीं पाता। ईश्वर को 'माली' मान लेने के बाद भक्त निश्चित हो जाता है कि अब उसे व्यर्थ नहीं रोना पड़ेगा, क्योंकि उसकी रक्षा का भार प्रभु पर है।

## भजन 8

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

व्याख्या (भजन 78):

इस भजन में 'नाम-स्मरण' के महत्व और संसार की आसक्ति से मुक्त होने का संदेश है।

- भ्रम की निवृत्ति: हरि का नाम लेते ही संसार के सारे मिथ्या भ्रम स्वतः नष्ट हो जाते हैं। भक्त केवल यही याचना करता है कि प्रभु का साथ कभी न छूटे, क्योंकि वही अज्ञान के अंधेरे को काटने का एकमात्र मार्ग है।
- नाम का अमृत: लेखक पुनः स्मरण कराते हैं कि बिना नाम-रस के जीवन की डाली सूखी रहती है। जैसे चातक पक्षी स्वाति की बूद के लिए व्याकुल रहता है, वैसे ही आत्मा को प्रभु नाम के लिए प्यासा रहना चाहिए।
- वर्तमान का सत्य: हम अक्सर 'आने वाले कल' की चिन्ताओं में आंसू बहाते हैं, जबकि यह जीवन केवल एक स्वप्न है। लेखक का सुझाव है कि बाहर की दुनिया को सजाने के बजाय हृदय में प्रेम जगाना और ईश्वर के चरणों में बैठना ही वास्तविक 'चैन' का मार्ग है।

## भजन 79

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

व्याख्या (भजन 79):

यह भजन मन की चंचलता और प्रभु की शांति के मिलन का संदेश देता है।

- तत्काल शांति: लेखक कहते हैं कि शांति कहीं भविष्य में नहीं, बल्कि इसी क्षण 'हरि के चरणों' में बैठने (पूर्ण समर्पण) में है। भक्त की आँखें दर्शन के लिए व्याकुल हैं, पर उसका मन चंचल बना हुआ है।
- लहर और सागर: संसार की परिस्थितियाँ लहरों की तरह अशांत हैं, जबकि परमात्मा वह 'शांत सागर' है जहाँ पहुँचकर हर हलचल थम जाती है। संतों की पुकार इसी शाश्वत शांति के लिए है।
- पास का विस्मरण: विडंबना यह है कि जिसे हम बाहर खोज रहे हैं, वह 'प्रीतम' हमारे हृदय के अत्यंत निकट है, पर दुनिया की माया (मृगतृष्णा) हमें उसे निहारने नहीं देती।

भजन 80

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

व्याख्या (भजन 80):

इस भजन में भक्त की निरहंकार अवस्था और पूर्ण शरणागति का चित्रण है।

- खिवैया पर भरोसा: जीवन की नैया जब संसार के दुखों के भँवर में फँसती है, तब अपनी बुद्धि असमर्थ हो जाती है। भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और प्रभु का 'सेवक' मानकर पार लगाने की विनती करता है।
- पुत्रवत अधिकार: भक्त अपने ईश्वर से कहता है कि जब सकल सृष्टि का स्वामी उसका पिता है, तो वह एक असहाय बालक की तरह क्यों विलाप करे? वह केवल प्रभु की छवि को अपने नयनों में बसाना चाहता है।
- जान का सवेरा: संसार ने 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर भक्त को छला है। यह दुनिया एक स्वप्न की तरह है जिसने केवल दर्द दिया है। अब भक्त उस 'सुबेरे' (जानोदय) की प्रतीक्षा में है जहाँ केवल प्रभु का प्यार शेष रहे।

## भजन 81

जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।  
मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

व्याख्या (भजन 81):

यह भजन आत्मा की परम विरह वेदना और उस 'छलिया' (परमात्मा) के प्रति अनन्य प्रेम का प्रकटीकरण है।

- अकेलापन और मरहम: भक्त संसार के कठिन पथ पर चलते हुए घायल महसूस करता है। वह अपने घाव दुनिया को नहीं दिखाना चाहता, क्योंकि उसे पता है कि उनका एकमात्र मरहम प्रभु का 'प्यार' है।
- अंधेरे में आश्वासन: जब चारों ओर अज्ञान का अंधेरा हो, तब भक्त को किसी चमत्कार की नहीं, बल्कि केवल प्रभु के एक वचन की प्यास होती है—"तू मेरा है।" यह शब्द ही उसे अभय प्रदान करता है।
- नीर की भाषा: भक्त पूछता है कि वह प्रभु को कैसे रिझाए? फिर उसे अनुभव होता है कि उसके नेत्रों से बहने वाला विरह-जल (नीर) स्वयं कह रहा है कि प्रभु अब कहीं और न जाकर उसके हृदय (दिल) में ही बस जाएं।

## भजन 82

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।  
तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।  
बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।  
दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।  
सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।  
छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।  
डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

### व्याख्या (भजन 82):

इस भजन में साक्षी भाव (Witness Consciousness) और पूर्ण समर्पण का दर्शन समाहित है।

- साक्षी परमात्मा: ईश्वर एक 'दृष्टा' की तरह संसार के खेल को देख रहे हैं, जहाँ लोग अपने ही 'मचलते सपनों' के पीछे भाग रहे हैं और तड़प रहे हैं। भक्त इस खेल से ऊपर उठकर केवल प्रभु की 'मर्जी' और उनके 'प्यार' की मांग करता है।
- नाचता हुआ दरिया: भक्त स्वयं को उस दरिया के समान मानता है जो अपनी मंजिल जाने बिना बस प्रभु की धुन में नाच रहा है। उसे मंजिल की चिंता इसलिए नहीं है क्योंकि उसे विश्वास है कि प्रभु हर पल उसके साथ हैं।
- अभय दान: जब भक्त ईश्वर को अपने 'जीवन का माली' स्वीकार कर लेता है, तो उसे 'काली रातों' (कष्टों) का डर लगना बंद हो जाता है। उसे भरोसा है कि माली अपने उपवन (जीवन) की रक्षा स्वयं करेगा।

### भजन 83

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

### व्याख्या (भजन 83):

यह भजन नाम-जप की शक्ति और संसार की असत्यता का सुंदर विश्लेषण करता है।

- भ्रम का नाश: भक्त कहता है कि 'चैतन्यघन' (चेतना के पुंज) का जाप करने मात्र से संसार के सारे मिथ्या भ्रम टूट जाते हैं। जैसे ही सत्य का बोध होता है, हरि की कृपा का अनुभव होने लगता है।
- नाम की प्यास: 'पी रटो मन' वह मूल मंत्र है जो अज्ञान के अंधेरे को काटता है। बिना इस नाम-रस के जीवन की डाली सूखी रहती है। लेखक चातक पक्षी का उदाहरण देते हैं कि जैसे वह स्वाति की बूंद नहीं भूलता, वैसे ही मन को नाम नहीं भूलना चाहिए।
- स्वप्निल सजावट: मनुष्य भविष्य की चिंताओं में आसू बहाता है, पर लेखक याद दिलाते हैं कि यह जीवन एक 'सुपना' (स्वप्न) है। जो अस्थाई है, उसे सजाने में समय नष्ट करने के बजाय सत्य को खोजना चाहिए।

### भजन 84

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
 हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
 रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
 पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
 लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
 कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।  
 मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।  
 प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

व्याख्या (भजन 84):

इस भजन में मन के द्वंद्व और ईश्वर की निकटता का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है।

- तत्काल शांति का मार्ग: लेखक का दर्शन बहुत स्पष्ट है—जैसे ही दिल से 'तृष्णा' (इच्छाएं) दूर होती हैं और प्रेम जागता है, प्रभु के चरणों में बैठते ही 'क्षण भर' में शांति (चैन) मिल जाती है। शांति कोई दूर की वस्तु नहीं, बल्कि समर्पण का परिणाम है।
- सागर और लहर: भक्त अपने चंचल मन से परेशान है। वह देखता है कि संसार की परिस्थितियाँ 'लहरों' की तरह अस्थिर हैं, जबकि परमात्मा वह 'शांत और अनंत सागर' है जहाँ पहुँचकर मन स्थिर हो जाता है।
- पास का विस्मरण: दुनिया एक 'मृगतृष्णा' की तरह हमें बाहर भटकाती है, जबकि हमारा 'प्यारा प्रीतम' (ईश्वर) हमारे अत्यंत निकट है। भक्त स्वयं से प्रश्न करता है कि हम उस पास बैठे प्रभु को निहार क्यों नहीं पा रहे?

## भजन 85

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।  
 भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।  
 मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
 सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।  
 मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।  
 मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।  
 ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।  
 जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

व्याख्या (भजन 85):

यह भजन पूर्ण शरणागति और भक्त के अटूट विश्वास का दस्तावेज़ है।

- एकमात्र आधार: जब जीवन की नैया संसार के दुखों के भँवर में फँसकर डगमगाने लगती है, तब भक्त अपनी चतुराई छोड़कर उस 'परम खिवैया' को पुकारता है। वह स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और प्रभु का 'सेवक' मानकर सारा भार उन पर छोड़ देता है।
- पुत्रवत अधिकार: भक्त अपने ईश्वर से कहता है कि जब पूरे ब्रह्मांड का स्वामी उसका पिता है, तो एक बालक के रूप में उसे दुखी होने का कोई कारण नहीं है। वह केवल यह चाहता है कि प्रभु उसके नेत्रों में बसकर उसके जीवन के सारे 'ताप' (कष्ट) हर लें।
- मर्जी का समर्पण: भक्त की अपनी कोई शर्त नहीं है—"जहाँ ले चलो"। उसकी एकमात्र चाह यह है कि प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि उससे न फेरें। वह स्वीकार करता है कि संसार ने उसे 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर भटकाया है, अब वह केवल प्रभु को 'टेरना' (पुकारना) जानता है।

## भजन 86

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

व्याख्या (भजन 86):

इस भजन में भक्त की विरह-वेदना और उस 'छलिया' (परमात्मा) के प्रति अनन्य प्रेम की पुकार है।

- अंधेरे में प्रकाश की खोज: यह दुनिया एक ऐसे स्वप्न की तरह है जिसने केवल दर्द बिखेरा है। 'पथ दूभर' है और कहीं चैन नहीं है। भक्त अपने इन जख्मों का मरहम केवल ईश्वरीय प्यार में ढूँढता है और उस 'सुबेरे' (ज्ञान के उदय) की प्रतीक्षा करता है।
- एक शब्द का सहारा: जब चारों ओर अज्ञान का सघन अंधेरा छाया हो, तब भक्त को केवल एक ही मरहम चाहिए—प्रभु का यह आश्वासन कि "तू मेरा है।" वह अपना पूरा जीवन और अपने प्राण उनके चरणों में समर्पित कर देता है।
- रिझाने की कला: भक्त 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) से पूछता है कि उन्हें कैसे प्रसन्न करे? फिर उसे बोध होता है कि उसकी आँखों से बहने वाला प्रेम-जल ही सबसे श्रेष्ठ भाषा है, जो प्रभु को हृदय में बसने का निमंत्रण दे रही है।

## भजन 85

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।  
भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।  
मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।  
मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।  
मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।  
ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।  
जग की रीति न कुछ भी जानूँ, नयना रोवें तुमको टेरे।

व्याख्या (भजन 85):

यह भजन पूर्ण शरणागति और भक्त के अटूट विश्वास का दस्तावेज़ है।

- एकमात्र आधार: जब जीवन की नैया संसार के दुखों के भँवर में फँसकर डगमगाने लगती है, तब भक्त अपनी चतुराई छोड़कर उस 'परम खिवैया' को पुकारता है। वह स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और प्रभु का 'सेवक' मानकर सारा भार उन पर छोड़ देता है।
- पुत्रवत अधिकार: भक्त अपने ईश्वर से कहता है कि जब पूरे ब्रह्मांड का स्वामी उसका पिता है, तो एक बालक के रूप में उसे दुखी होने का कोई कारण नहीं है। वह केवल यह चाहता है कि प्रभु उसके नेत्रों में बसकर उसके जीवन के सारे 'ताप' (कष्ट) हर लें।
- मर्जी का समर्पण: भक्त की अपनी कोई शर्त नहीं है—"जहाँ ले चलो"। उसकी एकमात्र चाह यह है कि प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि उससे न फेरें। वह स्वीकार करता है कि संसार ने उसे 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर भटकाया है, अब वह केवल प्रभु को 'टेरना' (पुकारना) जानता है।

## भजन 86

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
पथ दूभर अनजानी गलियाँ, चैन न आये छिपो न छलिया।  
मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

व्याख्या (भजन 86):

इस भजन में भक्त की विरह-वेदना और उस 'छलिया' (परमात्मा) के प्रति अनन्य प्रेम की पुकार है।

- अंधेरे में प्रकाश की खोज: यह दुनिया एक ऐसे स्वप्न की तरह है जिसने केवल दर्द बिखेरा है। 'पथ दूभर' है और कहीं चैन नहीं है। भक्त अपने इन जख्मों का मरहम केवल ईश्वरीय प्यार में ढूँढता है और उस 'सुबेरे' (ज्ञान के उदय) की प्रतीक्षा करता है।
- एक शब्द का सहारा: जब चारों ओर अज्ञान का सघन अंधेरा छाया हो, तब भक्त को केवल एक ही मरहम चाहिए—प्रभु का यह आश्वासन कि "तू मेरा है।" वह अपना पूरा जीवन और अपने प्राण उनके चरणों में समर्पित कर देता है।
- रिझाने की कला: भक्त 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) से पूछता है कि उन्हें कैसे प्रसन्न करे? फिर उसे बोध होता है कि उसकी आँखों से बहने वाला प्रेम-जल ही सबसे श्रेष्ठ भाषा है, जो प्रभु को हृदय में बसने का निमंत्रण दे रही है।

भजन 87

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

व्याख्या (भजन 87):

यह भजन भक्त के हृदय के मौन संवाद और पूर्ण निर्भरता को दर्शाता है।

- हृदय का निमंत्रण: भक्त अनुभव करता है कि जो आंसू उसकी आँखों से बह रहे हैं, वे बिना कहे ईश्वर को हृदय में वास करने का निमंत्रण दे रहे हैं। वह देखता है कि संसार एक स्वप्न की भाँति चंचल है, जहाँ लोग इच्छाओं के पीछे तड़प रहे हैं, जबकि परमात्मा एक 'मौन दृष्टा' की तरह सब देख रहे हैं।
- अटूट संबल: भक्त स्वयं को एक 'अबल' (शक्तिहीन) बालक मानकर ईश्वर से केवल उनके प्रेम और सहारे (संबल) की मांग करता है। वह उस दरिया के समान है जो अपनी दिशा जाने बिना बस प्रभु की धुन में आनंदित होकर बह रहा है।
- काली रातों का अंत: जब अंतर्मन में प्रभु की छवि बसी हो, तो जीवन की कठिन से कठिन 'काली रातें' (विपत्तियाँ) भी डराना बंद कर देती हैं। भक्त को विश्वास है कि उसका साथ देने वाला साक्षात् ईश्वर है।

## भजन 88

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।  
चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।  
सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।  
हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।  
पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।  
रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।  
प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।  
चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

व्याख्या (भजन 88):

इस भजन में अभय दान और नाम-स्मरण की अपार महिमा का वर्णन है।

- जीवन के माली: जैसे एक माली अपने बगीचे के हर फूल का ध्यान रखता है, वैसे ही ईश्वर भक्त के जीवन की रक्षा करते हैं। इस बोध के आते ही मन से डर समाप्त हो जाता है और विलाप की जगह विश्वास ले लेता है।
- अज्ञान का नाश: 'चैतन्यघन' का जाप करने से संसार के सारे मायावी भ्रम स्वतः टूट जाते हैं। 'पी रटो मन' की पुकार अज्ञान के उस सघन अंधेरे को मिटा देती है जो आत्मा को सत्य देखने से रोकता है।
- नाम की प्यास: लेखक याद दिलाते हैं कि जैसे बिना जल के डाली सूख जाती है, वैसे ही बिना ईश्वरीय नाम के जीवन नीरस रहता है। भविष्य की व्यर्थ चिंता में आंसू बहाने के बजाय, चातक की तरह उस 'नाम' की रट लगानी चाहिए जो शाश्वत है।

## भजन 89

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।

व्याख्या (भजन 89):

यह भजन संसार की क्षणभंगुरता और मन की चंचलता के बीच ईश्वर की शांति को खोजने का मार्ग दिखाता है।

- अस्थाई जगत: लेखक याद दिलाते हैं कि यह जीवन एक 'सुपना' (स्वप्न) है। जो चीज स्थाई नहीं है, उसे बाहरी साज-सज्जा से सजाने का प्रयास व्यर्थ है। 'तृष्णा' (अतृप्त इच्छाएं) ही अशान्ति का मूल हैं। जैसे ही कोई ईश्वर के चरणों में बैठता है, उसे उसी क्षण परम शांति प्राप्त होती है।
- लहर और सागर: हमारा मन उन लहरों की तरह है जो निरंतर उठती-गिरती रहती हैं, जिससे जीवन अशांत रहता है। परमात्मा वह 'शांत और अनंत सागर' है जहाँ पहुँचकर ये लहरें विलीन हो जाती हैं।
- भ्रम से मुक्ति: संसार को 'मृगतृष्णा' कहा गया है, जो केवल प्यास का भ्रम पैदा करती है पर उसे बुझाती नहीं। भक्त संतों की तरह उसी 'नाथ' को पुकारता है जो इस मायाजाल से बाहर निकाल सके।

## भजन 90

प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।

तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।

भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।

धमेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

व्याख्या (भजन 90):

इस भजन में भक्त की आर्त पुकार और ईश्वर की सर्वव्यापकता का बोध कराया गया है।

- अत्यंत निकटता: लेखक एक बड़ा सत्य प्रकट करते हैं—'प्रीतम' (परमात्मा) हमारे अत्यंत निकट हैं। विडंबना यह है कि हम उन्हें बाहर ढूँढते हैं और निहार नहीं पाते। जब जीवन की नैया संसार के भँवर में डगमगाती है, तब वे ही एकमात्र 'खिवैया' (मल्लाह) बनकर पार लगाते हैं।
- पुत्रवत अधिकार: "जब पूरी सृष्टि का स्वामी मेरा पिता है, तो मैं क्यों रोऊँ?"—यह पंक्ति भक्त के साहस और ईश्वर के प्रति उसके प्रेम-भरे अधिकार को दर्शाती है। एक बालक की तरह वह अपनी रक्षा का पूरा भार पिता पर छोड़ देता है।
- पूर्ण समर्पण: भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वे उसके नयनों में बस जाएं ताकि जीवन के सारे संताप (ताप) मिट सकें। वह अपनी मर्जी प्रभु की मर्जी में मिला देता है, बस एक ही शर्त रखता है कि प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि उससे कभी न फेरें।

## भजन 91

जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।  
स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।  
जख्म लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।  
पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।  
मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।  
छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।  
बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।  
मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

### व्याख्या (भजन 91):

यह भजन एक भक्त की उस निश्छल अवस्था को दर्शाता है जहाँ वह संसार की चतुराई से हारकर ईश्वर के प्रेम में शरण चाहता है।

- दुनियादारी से विरक्ति: भक्त स्वीकार करता है कि उसे दुनियादारी की चतुर रीतियाँ नहीं आतीं। उसके लिए तो बस 'टेरना' (पुकारना) ही एकमात्र भाषा है। संसार के 'स्वप्न' ने जो दर्द दिया है, उसका अंत केवल ज्ञान के 'सुबेरे' से ही संभव है।
- छलिया की पुकार: जीवन का मार्ग कठिन और गलियां अनजानी हैं। भक्त अपने आराध्य को 'छलिया' कहकर पुकारता है क्योंकि वह छिपकर प्रेम की परीक्षा ले रहा है। भक्त के प्राण केवल उनकी शरण में ही विश्राम पा सकते हैं।
- एक आश्वासन की शक्ति: जब चारों ओर अज्ञान का अंधेरा हो, तब भक्त को केवल एक ही मरहम चाहिए—प्रभु का यह आश्वासन कि "तू मेरा है।" वह अपनी 'मन्द बुद्धि' को प्रभु के चरणों में रखकर केवल उनकी सेवा और ज्ञान की याचना करता है।

## भजन 92

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।  
जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।  
दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।  
ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।  
तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।  
बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

व्याख्या (भजन 92):

इस भजन में साक्षी भाव और पूर्ण शरणागति का अद्भुत संगम है।

- अश्रु रूपी संवाद: भक्त 'चैतन्यघन' (ज्ञान के पुंज) से पूछता है कि उन्हें कैसे प्रसन्न करे? फिर उसे बोध होता है कि उसकी आँखों से बहने वाला प्रेम-जल (नीर) स्वयं शब्दहीन होकर प्रार्थना कर रहा है कि प्रभु अब कहीं और न जाकर उसके हृदय में ही बस जाएं।
- साक्षी परमात्मा: ईश्वर एक 'दृष्टा' की तरह शांत हैं, जबकि दुनिया अस्थायी सपनों के पीछे भाग रही है। भक्त इस मायावी खेल में उलझने के बजाय प्रभु की 'मर्जी' को सर्वोपरि मानता है।
- अटल विश्वास: भक्त स्वयं को एक 'अबल' (निर्बल) बालक मानकर ईश्वर से केवल उनके संबल (सहारे) की मांग करता है। वह उस दरिया के समान है जो अपनी मंजिल जाने बिना बस प्रभु की धुन में नाच रहा है, क्योंकि उसे विश्वास है कि प्रभु हर पल उसके साथ हैं।

### भजन 93

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

व्याख्या (भजन 93):

यह भजन भक्त के अंतर्मन में ईश्वरीय छवि के प्रभाव और नाम-स्मरण की शक्ति को दर्शाता है।

- अभय का बोध: लेखक कहते हैं कि यदि आँखों में प्रभु की छवि बसी हो, तो बाहर की 'काली रातें' (दुःख-कष्ट) डर नहीं पातीं। ईश्वर को 'जीवन का माली' मानना एक सुरक्षा कवच की तरह है; भक्त जानता है कि माली अपने उपवन को कभी नष्ट नहीं होने देगा।
- भ्रम का अंत: 'चैतन्यघन' (चेतना के पुंज) का जाप करने से संसार के सारे मिथ्या भ्रम स्वतः टूट जाते हैं और आत्मा को हरि की कृपा का स्पष्ट अनुभव होने लगता है।
- नाम की प्यास: 'पी रटो मन' वह मंत्र है जो अज्ञान के अंधेरे को मिटाता है। जिस प्रकार जल के बिना डाली सूख जाती है और चातक स्वाति की बूंद को नहीं भूलता, वैसे ही भक्त को नाम-रस की निरंतर प्यास बनी रहनी चाहिए।

## भजन 94

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।  
सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।  
तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।  
हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।  
रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।  
पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।  
लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।  
कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।

### व्याख्या (भजन 94):

इस भजन में वर्तमान क्षण की महत्ता और मन की चंचलता के बीच ईश्वर की शांति को पाने का सूत्र दिया गया है।

- भविष्य की व्यर्थ चिन्ता: लेखक मनुष्य को चेताते हैं कि वह आने वाले कल के डर में अपने आज के आंसू बहाता है। जब यह जीवन ही एक 'सुपना' (स्वप्न) है, तो इसे बाहरी आडंबरों से सजाना व्यर्थ है।
- तत्काल शांति: 'तृष्णा' (इच्छाएं) ही अशान्ति का मूल हैं। जैसे ही मनुष्य हरि के चरणों में बैठता है (पूर्ण समर्पण करता है), उसे उसी क्षण वह चैन मिल जाता है जिसकी उसे तलाश थी।
- मन का सागर: भक्त दर्शन के लिए व्याकुल है, पर उसका मन चंचल लहरों की तरह उसे भटकाता है। वह उस 'शांत और अनंत सागर' (परमात्मा) को पुकारता है जहाँ पहुँचकर मन की सारी लहरें विलीन हो जाती हैं।

## भजन 95

मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।  
प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।  
तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।  
भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।  
मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।  
मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।  
मर्जी तेरी जहाँ ले चलो, पर मुझसे ना नयन चुराओ।

## व्याख्या (भजन 95):

यह भजन आत्मा के उस सत्य को प्रकट करता है जहाँ वह माया को पहचान कर पूर्णतः शरणागत हो जाती है।

- पास का विस्मरण: संसार को 'मृगतृष्णा' कहा गया है जो केवल प्यास का भ्रम पैदा करती है। लेखक बड़ा ही मर्मस्पर्शी प्रश्न करते हैं कि जब हमारा 'प्रीतम' हमारे अत्यंत निकट है, तो हम उसे निहारने के बजाय बाहर क्यों भटक रहे हैं?
- अंतिम सहारा: जब जीवन की नैया दुखों और संशयों के भँवर में फँसकर डगमगाने लगती है, तब अपनी चतुराई काम नहीं आती। भक्त केवल उस 'परम खिवैया' (ईश्वर) को पुकारता है।
- पुत्रवत अधिकार: भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' मानकर प्रभु का सेवक बनने की याचना करता है, पर साथ ही यह अधिकार भी जताता है कि जब पूरे ब्रह्मांड का स्वामी उसका पिता है, तो वह एक असहाय बालक की तरह क्यों विलाप करे? वह केवल प्रभु की छवि को अपने नयनों में बसाकर सारे कष्ट (ताप) मिटाना चाहता है।

## भजन 96

ले चल मेरे नाविक मुझको, दिये भुलावा धीरे धीरे।

जग की रीति न कुछ भी जानूं, नयना रोवें तुमको टेरे।

स्वप्निल दुनिया दर्द बिखेरा, छिपा कहाँ न जाने सुबेरा।

जखम लगे किसको दिखलाऊँ, चाह रहा मैं प्यार तुम्हारा।

पथ दूभर अनजानी गलियां, चैन न आये छिपो न छलिया।

मेरे प्राण पुकारे तुमको, दे दे मुझको अपनी शरण।

छाया है सब ओर अंधेरा, कह तो दे यह तू है मेरा।

बरसे अंखियाँ चाह प्यार की, चरण पडूँ यह जीवन तेरा।

## व्याख्या (भजन 96):

इस भजन में भक्त की विरह वेदना और उस 'छलिया' (परमात्मा) के प्रति अनन्य प्रेम की पुकार है।

- छला गया मन: भक्त स्वीकार करता है कि संसार ने उसे 'धीरे-धीरे' झूठे दिलासे देकर भटकाया है। यह 'स्वप्निल दुनिया' केवल दर्द देने वाली है। वह इस दर्द के बीच उस 'सुबेरे' (ज्ञान के उदय) की प्रतीक्षा कर रहा है जहाँ प्रभु का दर्शन हो।
- अनजाना पथ: जीवन का मार्ग 'दूभर' और अनजाना है। भक्त अपने आराध्य को 'छलिया' कहता है क्योंकि वह छिपकर प्रेम की परीक्षा ले रहा है। उसे प्रभु के बिना कहीं चैन नहीं मिलता और वह केवल उनकी शरण का अभिलाषी है।
- एक आश्वासन की शक्ति: जब चारों ओर अज्ञान का सघन अंधेरा हो, तब भक्त को केवल एक ही मरहम चाहिए—प्रभु का यह आश्वासन कि "तू मेरा है।" वह अपनी आँखों के आंसुओं के साथ अपना पूरा जीवन प्रभु के चरणों में समर्पित कर देता है।

## भजन 97

मन्द बुद्धि हूँ जान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।

चैतन्यघन आनन्दघन, कैसे रिझाऊँ तुम कहो।

जो नीर बहते नयन से, वे कह रहे दिल में रहो।

दृष्टा जगत के देखते, पर कुछ न कहते तड़फते।

ऐसी क्या दुनिया तेरी, सुपने यहाँ पर मचलते।

तुम ले चलो मर्जी जहाँ, पर प्यार तुम देना सदा।

बालक तुम्हारे अबल हैं, चाहूँ तेरा संबल सदा।

दरिया तुम्हारा नाचते, जायें कहाँ ना जानते।

व्याख्या (भजन 97):

यह भजन भक्त के अहंकार के विसर्जन और परमात्मा की विराटता के प्रति समर्पण का प्रतीक है।

- मौन प्रार्थना: भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' मानकर अपनी सारी चतुराई प्रभु को सौंप देता है। वह पूछता है कि उस 'चैतन्यघन' को कैसे प्रसन्न किया जाए? फिर उसे स्वयं ही उत्तर मिलता है कि आँखों से बहते आंसू ही सबसे बड़ी प्रार्थना हैं, जो कह रहे हैं—"प्रभु, अब मेरे दिल में ही वास करो।"
- साक्षी भाव: ईश्वर एक 'दृष्टा' की तरह शांत हैं, जबकि दुनिया अस्थायी सपनों (सुपने) और इच्छाओं के पीछे भागकर तड़प रही है। भक्त इस व्यर्थ की दौड़ से थककर प्रभु की मर्जी में ही अपनी खुशी ढूँढता है।
- अनंत प्रवाह: भक्त स्वयं को ईश्वर के हाथ की वह 'दरिया' मानता है जो अपनी मंजिल की परवाह किए बिना बस उनकी धुन में नाच रही है। उसे केवल एक ही संबल (सहारा) चाहिए—प्रभु का प्यार।

## भजन 98

सुमरण करे तेरा सदा, तुम साथ हो यह मानते।

छवि हो तुम्हारी नयन में, कितनी रातें काली हो।

डर ना लगे रूला न अब, जीवन के तुम माली हो।

चैतन्यघन हो तुम सदा, जिसने भी तुमको है जपा।

सब टूट जाते भ्रम यहाँ, हरि की सदा मिलती कृपा।

हरि हरि कहें बहें यह नयना, साथ न छोड़ो मेरा।

पी रटो मन अब पी रटो मन, कट जाये अज्ञान अंधेरा।

रस बिन डाली सूख गई है, फूल न अब तक फूले।

## व्याख्या (भजन 98):

इस भजन में 'सत्य' के साक्षात्कार और नाम-स्मरण के प्रभाव का अद्भुत वर्णन है।

- विश्वास की शक्ति: "तुम साथ हो"—यह दृढ़ विश्वास ही भक्त की सबसे बड़ी शक्ति है। जब आँखों में प्रभु की छवि बसी हो, तो बाहर का सघन अंधकार या जीवन की 'काली रातें' (संकट) उसे विचलित नहीं कर सकतीं। ईश्वर को 'माली' मान लेने पर सारा भय समाप्त हो जाता है।
- भ्रम का अंत: 'चैतन्यघन' का सुमिरन करने वाले के जीवन से माया के सारे पर्दे हट जाते हैं। जैसे ही भ्रम टूटता है, हरि की कृपा का झरना बहने लगता है।
- अमृतमयी रटन: भक्त केवल 'पी रटो मन' की रट लगाता है, क्योंकि वह जानता है कि नाम के बिना जीवन की डाली रसहीन होकर सूख जाएगी। वह प्रभु से केवल एक ही प्रार्थना करता है—"साथ न छोड़ो मेरा", क्योंकि प्रभु का साथ ही अज्ञान के अंधेरे को काट सकता है।

## भजन 99

प्यासा चातक रटे नाम को, कैसे तुमको भूले।

चिन्ता करता आने वाले की, रो-रो नीर बहाता।

सुपना है सब जीवन तेरा, क्यों तू इसे सजाता।

तृष्णा सारी दूर करो अब, प्यार जगाओ दिल में।

हरि के चरणों में बैठो तुम, चैन मिलेगा क्षण में।

रिमझिम रिमझिम अंखियां बरसे, तेरा दर्शन चाहूं।

पागल मनवा मान न मेरा, कैसे इसे मनाऊं।

लहरें उठतीं गिरतीं पल पल, सागर शान्त अनन्ता।

## व्याख्या (भजन 99):

यह भजन मन की अंतिम व्याकुलता और शांति प्राप्ति के अचूक मार्ग का वर्णन है।

- चातक सा अनुराग: भक्त की अवस्था उस चातक पक्षी जैसी है जो केवल स्वाति नक्षत्र की बूंद के लिए पुकारता है। लेखक समझाते हैं कि भविष्य की व्यर्थ चिन्ता में आंसू बहाना अज्ञानता है, क्योंकि यह संपूर्ण दृश्य जगत एक 'स्वप्न' मात्र है।
- क्षणभंगुरता का बोध: जो अस्थाई है, उसे सजाने का मोह छोड़कर जब साधक अपनी 'तृष्णा' (अतृप्त इच्छाएँ) त्याग देता है, तो उसे 'क्षण भर' में वह परम शांति (चैन) मिल जाती है जो हरि के चरणों में स्थित है।
- सागर की स्थिरता: मन 'पागल' होकर संसार की अशांत लहरों में भटकता रहता है, जबकि सत्य वह 'शांत और अनंत सागर' है जिसे संतों ने पाया है। भक्त केवल दर्शन की प्यास में उस अनंत की पुकार करता है।

## भजन 100 (पूर्णा)

कहाँ छिपे तुम नाथ हमारे, तुझे पुकारे सन्ता।  
मृगतृष्णा है दुनिया सारी, भरमाती है हमको।  
प्यारे प्रीतम पास हमारे, क्यों न निहारें तुमको।  
तुम ही हो बस एक सहारा, डगमग डोले नैया।  
भँवर बीच में फँसा हुआ हूँ, पार लगा दो खिवैया।  
मन्द बुद्धि हूँ ज्ञान तुम्ही दो, मुझे बना लो अपना सेवक।  
सकल सृष्टि के तुम हो मालिक, क्यों रोता मैं तेरा बालक।  
मेरे नयनों में बस जाओ, सारे मेरे ताप मिटाओ।

**व्याख्या (भजन 100):**

पुस्तक का यह अंतिम भजन एक पूर्ण चक्र की तरह है, जहाँ साधक 'मृगतृष्णा' से मुक्त होकर पूर्णतः 'ईश्वर' में लीन हो जाता है।

- परम सत्य की प्राप्ति: यहाँ साधक स्वीकार करता है कि दुनिया एक भ्रम है। सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि 'प्रीतम' (ईश्वर) कहीं दूर नहीं, बल्कि अत्यंत निकट 'पास' हैं। अब उसे बाहर निहारने की आवश्यकता नहीं रही।
- पूर्ण शरणागति: जीवन-नैया के भँवर में फँसने पर जब जीव हार जाता है, तो वह प्रभु को अपना 'खिवैया' बना लेता है। यहाँ 'अहं' का पूर्ण विसर्जन है—भक्त स्वयं को 'मन्द बुद्धि' और प्रभु का 'सेवक' मानकर निश्चिंत हो जाता है।
- शाश्वत संवाद: "क्यों रोता मैं तेरा बालक"—यह पंक्ति आत्म-बोध की पराकाष्ठा है। जब जीव को यह बोध हो जाता है कि वह उस परम पिता की संतान है, तो उसके सारे 'ताप' (दुःख) स्वतः समाप्त हो जाते हैं। केवल एक ही मांग शेष रहती है कि प्रभु की मर्जी में उसकी मर्जी मिल जाए।

इस दिव्य कृति 'पी रटो मन' के 100 भजनों की यह आध्यात्मिक यात्रा यहाँ पूर्ण होती है।